दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९७ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २६ अंक नं० ८

आनंद की प्राप्ति का अवसर

चारित्र

हे भाई! चार गतियों में परिभ्रमण करके तूने जो अनंत दुःख सहे हैं, उनसे यदि छूटना चाहता हो और मोक्षसुख प्राप्त करने की इच्छा हो तो जिनदेव के कहे हुए वीतरागविज्ञान का सेवन कर।

ज्ञान

जीव दुःख को चाहते नहीं, परंतु दुःख के कारणरूप मिथ्याभावों का दिन-रात सेवन करते हैं; तो वे दुःख से कैसे छूटेंगे?

दर्शन

और जीव सुख को चाहते हैं, परंतु सुख के कारणरूप वीतरागविज्ञान का एक क्षण भी सेवन नहीं करते; तो उन्हें सुख कैसे होगा?

हे जीव! सुख की प्राप्ति के इस अवसर में तू अत्यंत उत्साह से वीतरागविज्ञान का सेवन कर।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

दिसम्बर : १९७० वार्षिक मूल्य ३) रुपये (३०८) एक अंक २५ पैसा [मार्गशीर्ष : २४९७

श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव
जिनकी आचार्य पदवी का मंगल-उत्सव
पौष कृष्णा अष्टमी को मनाया जायेगा।

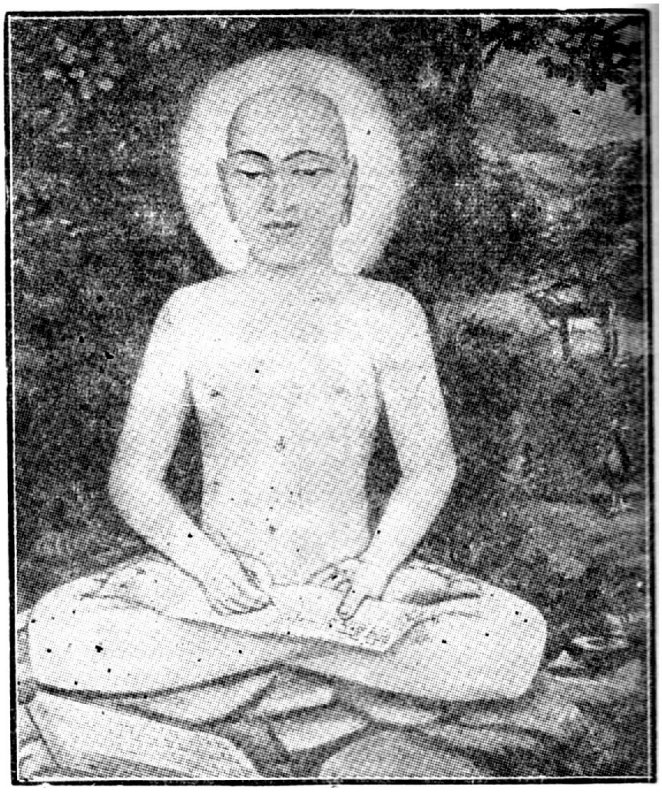

जासके मुखारविन्दतें प्रकाश भास वृंद,
स्याद्वाद जैनवैन इंद कुंदकुंद से।
तासके अभ्यासतें विकास भेदज्ञान होत,
मूढ सो लखै नहीं कुबुद्धि, कुंदकुंद से॥
देत हैं अशीस शीस नाय इंद चंद जाहि,
मोह-मार-खंड-तारतंड कुंदकुंद से।
विशुद्धि-बुद्धि-वृद्धिदा प्रसिद्ध-ऋद्धि-सिद्धिदा,
हुए न, हैं न, होहिंगे मुनिंद कुंदकुंद से॥

(कविवर वृंदावन)

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : श्री ब्र० गुलाबचंद जैन

दिसम्बर : १९७० ☆ मार्गशीर्ष : वीर नि० सं० २४९७, वर्ष २६वाँ ☆ अंक : ८

मुमुक्षु साधक की भूमिका

मुमुक्षु साधक के जीवन में कितनी सज्जनता होती है, कितनी नैतिकता होती है, परस्पर कितना वात्सल्यभाव होता है? इस संबंध में गुरुदेव ने अपने प्रवचन में कहा था कि—मुमुक्षु अर्थात् जिसको मोक्ष की अभिलाषा हो, ऐसे मोक्ष के अभिलाषी जीव में लौकिक नीति-सज्जनता का होना तो साधारण बात है। जिसको सर्व परभावों से रहित आत्मा की साधना करना है, उसके तीव्र अभक्ष-चोरी-अन्याय इत्यादि स्थूल पापभाव तो हो ही कैसे सकते हैं? जिसमें विकल्प का एक अंश भी नहीं चलता—उस आत्मा के साधक को तीव्र पापभाव स्वप्न में भी नहीं हो सकते। मोक्ष की साधना के बीच में ऐसे शुभभाव तो सहज ही हैं, वे तो अनाज के साथ उत्पन्न हुए घास के समान हैं। धर्मी की दृष्टि तो आत्मानंद को साधने में तल्लीन है, बीच में आनेवाले तृण समान शुभराग का प्रेम उसको नहीं होता, तब फिर अशुभ की तो बात ही कहाँ रही? यह वीतरागता की-साधक की भूमिका है।

उत्तम जीवन किसप्रकार जियें?

गुजराती आत्मधर्म द्वारा निकाली गई वैशाख शुक्ला २ की निबंध-योजना में आये हुए ८६ निबंधों में से सर्वश्रेष्ठ निबंध।

[लेखक—दीपक चंदुलाल जैन, राजकोट]

उत्तम जीवन किसप्रकार जियें ? इसका विचार यहाँ चार प्रकार से करेंगे—

(१) उत्तम जीवन क्या है ? (२) उत्तम जीवन की प्राथमिक भूमिका कैसी होती है ? (३) उत्तम जीवन की प्राप्ति (४) उत्तम जीवन की प्राप्ति का फल तथा लाभ।

(१) उत्तम जीवन क्या है ?

यहाँ प्रथम तो यह विचार आता है कि उत्तम जीवन क्या है ? अरे, अभी तक तो ऐसी ही भावना करते थे कि बड़े होकर खूब पढ़ेंगे, नौकरी या व्यापार करके, मोटर-बंगले लेंगे। कोई उच्च पद मिलने से कीर्ति प्राप्त होगी। बस इसी में हमारे जीवन की सार्थकता है। किंतु अब, पूज्य गुरुदेव की आत्मस्पर्शी वाणी का जो बोध आत्मधर्म द्वारा प्राप्त हो रहा है, इससे निश्चय होता है कि उपरोक्त मान्यतावाला जीवन, यह कहीं उत्तम जीवन नहीं है; यह तो वास्तव में आत्मा का जीवन ही नहीं है, यह तो जड़ का जीवन है; जड़ के संयोगों में कहीं जीव का जीवन नहीं है। आत्मा का जीवन कोई अलौकिक होना चाहिये। जगत के सामान्य जीव जड़ में सुख मानकर जो जीवन जी रहे हैं, वह उत्तम नहीं है, किंतु ज्ञानी जड़ से भिन्नता समझकर जो ज्ञानमय जीवन जीते हैं, वही जीवन उत्तम है। कैसा है वह जीवन ? अनंत-अनंत जीवनशक्ति को धारण करनेवाला जो चैतन्यद्रव्य है, वह तीनों काल विराजमान है, उसमें ज्ञान उपयोग की एकाग्रता होते ही सुख-आनंद आदि के परम स्वाद का वेदन होता है अर्थात् पूर्व में जो कभी प्राप्त नहीं किया वैसा आनंदमय जीवन प्रगट होता है, यही उत्तम जीवन है, यही सुखी जीवन है। ऐसे उत्तम जीवन के लिये प्राथमिक भूमिका कैसी होती है ? उसका भी विचार हमको करना चाहिये।

(२) उत्तम जीवन की भूमिका

ऊपर कहा वैसा उत्तम जीवन मात्र सुनने, पढ़ने या बोलने से आ जाये वैसा नहीं, उसके लिये पूर्व की तैयारी बराबर हो, तभी वह जीवन प्राप्त हो सकता है। इसके लिये उत्तम जीवन जीनेवाले ऐसे वीतरागी देव-गुरु तथा शास्त्र की श्रद्धा करके, वे आत्मा का क्या स्वरूप बतलाते हैं, उसको बराबर लक्ष्यपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। उसकी रुचि, संसार के प्रति उदासीनता आदि भी उत्तम प्रकार के होने चाहिये। विशेष में देव-गुरु-शास्त्र त्रिकाली शुद्ध स्वरूप को बतला रहे हैं, वह मेरे समीप ही है, वही मैं हूँ, शरीर के आकार का होते हुए भी शरीर से भिन्न ऐसा ज्ञानस्वरूप अभी मेरे पास है।—ऐसा अपने ज्ञान में निजस्वरूप का दृढ़ निर्णय करना चाहिये। मेरा स्वरूप कहीं बाह्य में नहीं, शरीर में नहीं, राग में नहीं, तथा अंदर के भेद-विकल्प भी मेरा स्वरूप नहीं; मेरा स्वरूप अर्थात् मेरा जीवन वह त्रिकाली चैतन्यभावमय है। ऐसे स्वरूप का ज्ञान में निर्णय करके अंतर में बारंबार उसका अभ्यास ही उत्तम जीवन की प्राथमिक भूमिका है। ऐसी सत्य भूमिका में भी जीव ने कभी प्रवेश नहीं किया। इसलिये मुमुक्षु को प्रथम निजस्वरूप का निर्णय करके उत्तम जीवन के लिये उसका प्रयत्न करना चाहिये।

(३) उत्तम जीवन की प्राप्ति

दूसरे प्रकार में प्राथमिक भूमिका के लिये जो ज्ञान में स्वरूप का निर्णय करने की बात आयी उस निर्णय के साथ अभी भी विकल्प है; अनुभव के पहले ऐसा विकल्प भी रहता है, तथापि उस विकल्प के ऊपर दृष्टि नहीं रखना है, अर्थात् उसकी महत्ता नहीं है; किंतु वर्तमान ज्ञान जिस त्रिकाली स्वरूप का विचार करता है, उस त्रैकालिक स्वरूप की महत्ता लाकर उसमें एकत्वबुद्धि से एकाकार तल्लीन हो जाना है। इसप्रकार स्वभाव की ओर ढलते हुए ज्ञान की मुख्यता है, विकल्प की मुख्यता नहीं। मुमुक्षु जीव ज्ञान के बल से निजस्वभाव में ऐसा एकाकार हो जाता है कि विकल्प से दूर हटकर आत्मा का प्रत्यक्ष (निर्विकल्प) स्वसंवेदन हो जाता है; बारंबार अपने स्वभाव में एकाग्र होने की रुचि, उसका उल्लास बलपूर्वक काम करता है; उसका उपयोग बारंबार त्रिकाली स्वभाव की ओर ही दौड़ता है। वीर्य के ऐसे स्व-सन्मुखता के उल्लास में विकल्प टूटकर निर्विकल्प आनंद का अनुभव हो जाता है। आहाहा! उस सुख-उस आनंद का इन जड़ शब्दों के द्वारा किसप्रकार वर्णन हो सकता है? कहाँ चेतन के सुख, आनंद तथा कहाँ इन जड़ के शब्दों की रचना। फिर भी थोड़े में कहा जाता है कि—अपूर्व-

अपूर्व आनंद की प्राप्ति होती है। अहो, धन्य वह फल! वही उत्तम जीवन है, वहीं से उत्तम जीवन का प्रारंभ होता है। वह जीवन धन्य-धन्य बन जाता है! ऐसे जीवन का प्रारंभ होने से जीव पंच परमेष्ठी भगवंतों की पंक्ति में विराजमान हो जाता है।

इसप्रकार अपने आत्मा की प्रतीति सहित जीवन ही सच्चा जीवन है, फिर वह मनुष्य हो अथवा तिर्यंच हो। जिसने अपने को नहीं जाना, वह मनुष्य हो तो भी पशु समान ही है। केवल मनुष्यपना या उत्तम कुल इत्यादि प्राप्त होना, वह कहीं उत्तम जीवन नहीं है, किंतु स्वद्रव्य की समझ तथा आनंद के अनुभवसहित जीवन ही सत्य जीवन है, वही उत्तम जीवन है।

(४) उत्तम जीवन की प्राप्ति का फल तथा लाभ

उत्तम जीवन की प्राप्ति होते ही उसी समय जीव को सुख तथा आनंद का प्रारंभ हो जाता है; तथा उसकी प्रतिसमय वृद्धि होती जाती है; विशेष वृद्धि होने से उसके फल में श्रावकपना तथा मुनिपना प्राप्त होता है; और उससे भी विशेष सुख की वृद्धि उत्तरोत्तर होती जाती है, तब वीतरागदशा तथा अरिहंतपद की प्राप्ति होती है, इसके बाद सिद्धपद का सर्वोत्कृष्ट जीवन प्राप्त होता है। ऐसे सर्वोत्कृष्ट फल की प्राप्ति उत्तम जीवन के द्वारा (अर्थात् स्वानुभव के प्रयत्न द्वारा) ही होती है! अहा, उस जीवन का क्या चमत्कार है!—कि एक बार वह उत्तम जीवन प्राप्त होने पर उसके फल में अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख के महान वृक्ष फलने लगे! उस जीवन की महिमा किसप्रकार करे? वास्तव में सम्यग्दर्शनसहित वीतरागी जीवन ही आदर्श उत्तम आनंदी जीवन है।

ऐसा जीवन प्राप्त होने से अनेक लाभ हैं। जब ऐसा जीवन प्राप्त नहीं हुआ था, तब प्रथम महान दोष जो मिथ्यात्व है, उसके कारण पर के कर्तापने का भाव रहता था, अब भिन्नता की प्रतीति होने पर ऐसा जीवन प्राप्त होते ही कर्ताबुद्धि का जो महान दोष अनंत संसार में भ्रमण करानेवाला है, वह तुरंत नाश हो जाता है। अनादि से ऐसा माना है कि जड़ शरीर से ही मैं जीवित हूँ, अर्थात् जड़ के कार्य मैं करता हूँ, मैं ही इनका कर्ता हूँ; मैं न होऊँ तो कोई कार्य नहीं हो सकता;—ऐसी अज्ञान मान्यतारूप मिथ्या अभिमान आत्मा की पहिचान के द्वारा ही दूर हो सकता है। इसके दूर होने से झूठी कर्ताबुद्धि का नाश होता है; तथा जीवन जिस झूठे बोझ से दबा रहता था, उस बोझ का नाश हो जाने से एकदम हलका (निराकुल) हो जाता है। उसको भावमरण दूर होकर आत्म-जीवन प्राप्त होता है। पुण्य इत्यादि राग को धर्म मानकर उस पुण्य

की क्रिया को ही अपना जीवन मानता था, किंतु अब ज्ञानमय सच्चे जीवन की प्राप्ति होते ही वह मान्यता दूर हो जाती है; इसलिये वह जीव पुण्य की क्रिया को पुण्य की जगह रखता है तथा धर्म की क्रिया को धर्म की जगह रखता है!—इसप्रकार दोनों को भिन्न समझकर, धर्म की क्रिया के द्वारा राग से भिन्न जीवन जीता है; वही सच्चा जीवन है। रागवाला जीवन, वह सच्चा जीवन नहीं है; राग से रहित वीतरागी ज्ञान जीवन ही सच्चा जीवन है।

इसप्रकार प्रत्येक तत्त्व की सच्ची पहिचान के द्वारा आत्मा के उत्तम जीवन की प्राप्ति होने से जीव को उत्तम फल अर्थात् लाभ होता है। जीवन तो आत्मा के ज्ञान-दर्शन तथा सुखपूर्वक ही जीने जैसा है; तथा यही उत्तम जीवन है।

उपसंहार—आत्मा की प्रतीतिसहित ऐसा उत्तम जीवन हमें पूज्य स्वामीजी की अनंत कृपा से; तथा आत्मधर्म में आनेवाले उनके वीतरागी उपदेश से शीघ्र प्राप्त हो... यही जीवन का ध्येय है।

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

अचूक इलाज

शरीर में अचानक गंभीर रोग आ जाये तब अचूक इलाज क्या?

शरीर से भिन्न नित्यानंदमय चैतन्य की भावना में उपयोग को लगा देना ही अचूक इलाज है। इस इलाज से रोग की पीड़ा का लक्ष्य छूटकर चैतन्य की शांति का वेदन होता है। यह अचूक इलाज है, इसलिये अवश्य लाभ होता है, तथा स्वाधीन है इसलिये बाहर के वैद्य तथा डाक्टर की प्रतीक्षा नहीं करना पड़ती, यह इलाज सब रोगों को मिटानेवाला है।

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

आत्मा के आनंद की साधना किसप्रकार करें ?

आत्मा का ध्यान करना हो तो पर की चिंता का बोझ उतारकर आत्मा की वीरता प्रगट कर... भाई, धर्म का साधन करने की यह ऋतु है। धर्म की सच्ची कमायी करने का यह अवसर है; अन्य चिंताओं में रुककर ऐसा अवसर मत चूकना।

[अष्टपाहुड़-मोक्षप्राभृत के प्रवचन से]

आत्मा के स्वभाव में दोष नहीं है; आत्मा का वास्तविक स्वभाव अनंत ज्ञान-आनंदसंपन्न है, किंतु पर्याय में दोष है, उस दोष का अभाव होकर शुद्धदशा प्रगट हो जाये, उसका नाम सुख, उसका नाम मोक्ष है। ऐसी मोक्षदशा किसप्रकार प्रगट हो ? कि जीव-अजीव की विभक्ति को अर्थात् भिन्नता को पहिचानकर शुद्धात्मा के ध्यान द्वारा पुण्य-पाप का परिहार करने से उत्तम वीतरागी सुख प्रगट होता है। आत्मा के आनंद की जिसको रुचि हो, उसको क्रोधादिक दोषों से रहित निर्मल स्वभाव का ध्यान करना चाहिये।

जिसकी मान्यता-श्रद्धा में जीव-अजीव की भिन्नता का ज्ञान नहीं, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय को जो पहिचानता नहीं, उसको आत्मा का ध्यान नहीं हो सकता। जिसको वस्तु का ज्ञान नहीं है, उसके ध्यान कैसा ? इसलिये कहते हैं कि जिनमत के अनुसार जीव-अजीव के यथार्थ स्वरूप को श्रद्धा-ज्ञान में लेकर फिर जीवस्वभाव में एकाग्र होकर पुण्य-पाप का परिहार करना चाहिये। इसप्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के द्वारा सुशोभित आत्मा उत्तम सुखरूप मोक्ष को साधता है।

आत्मा का ध्यान कौन कर सकता है ? प्रथम तो यथार्थ वस्तुस्वरूप का निर्णय करके जिसने मिथ्यात्व-शल्य को निकाल डाला है, वह पर से विमुख, स्व के सन्मुख होकर आत्मा को ध्याता है। जिसके पर की चिंता का अंत नहीं, उसको स्व का ध्यान कहाँ से होगा ? जिसका उपयोग ही पर की चिंता में लगा हुआ है, उसका उपयोग आत्मा की ओर कहाँ से जायेगा ?

इसलिये कहते हैं कि निश्चित और निभृत पुरुषों के द्वारा ही आत्मा साधा जा सकता है। पर की चिंता का भार जिसने ज्ञान में से उत्तर दिया, मेरे ज्ञान में पर का काम नहीं, पर का भार नहीं, क्रोधादि परभाव भी मेरे चैतन्यपिंड में नहीं—इसप्रकार ज्ञान में से परद्रव्यों की चिंता तथा परभावों का बोझ जिसने झटककर साफ कर दिया है, वह धर्मी जीव आत्मा को ध्याता है, ध्यान में वह अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करता है।

जिसको क्रोध-मान-माया-लोभ की तीव्रता होती है, उस ही में जिसका उपयोग रुक गया है, उस जीव को स्वभाव का रस आये बिना उसमें उपयोग किसप्रकार लगायेगा? अरे, चिदानंदस्वभाव सर्व दोषों से रहित भगवान, उसमें जिसका उपयोग लगे, उसके क्रोधादि कषायों का रस किसप्रकार रह सकता है? ऐसे स्वभाव का जिसको प्रेम है, उसको गृहस्थावस्था में भी कभी-कभी स्वरूप में उपयोग स्थिर हो जाता है, निर्विकल्प अनुभव में ही परम आनंद का अनुभव होता है।

अज्ञानी जीव क्रोधादि परभावों में अपना उपयोग एकाग्र करता है; ज्ञानी क्रोध से भिन्न ऐसे चैतन्यस्वभाव में अपना उपयोग एकाग्र करता है। जिसने शुभराग में उपयोग को एकाग्र किया है, उसे क्रोध में ही एकाग्रता है, उपयोग में एकाग्रता नहीं है। ज्ञानी को क्रोध के समय भी क्रोध में एकाग्रबुद्धि नहीं है, उससे भिन्न जो उपयोग है, उसे स्वरूप से अनुभव करता है। अरे, ऐसा भेदज्ञान भी नहीं करके केवल परभावों की अग्नि में ही शांति मानता है, वह उनसे मुक्त होकर आत्मा का कब ध्यान कर सकेगा? कब वह सच्ची शांति प्राप्त कर सकेगा? रौद्रपरिणामों में रुका जीव सिद्धि-सुख को कहाँ से देखेगा? राग की भावनावाला विषयों में मग्न जीव चैतन्य गुफा में परमात्म-भावना किसप्रकार कर सकेगा? सम्यक्त्वी दुनिया में चाहे जहाँ हो तो भी वह अपने चिदानंदस्वभाव में ही है, बाह्य में वह गया ही नहीं है, रागादि परभावों में वह वास्तव में गया ही नहीं है, क्योंकि उनमें वह एकरूप नहीं है। चाहे जैसी प्रतिकूलताओं के आने पर भी आत्मा की श्रद्धा व प्रेम का त्याग नहीं हो, तब समझना चाहिये कि आत्मा का रस है। भाई, बाहर की प्रीतिकूलता तेरे में है ही कहाँ? जो तुझे विघ्नकारक हो! बाहर के अनुकूल कार्य भी कहाँ तेरे में हैं कि तू उनका बोझ एवं चिंता रखे? जो वस्तु अपनी है ही नहीं, जिस वस्तु में स्वयं का अस्तित्व है ही नहीं, जिस वस्तु का कार्य आत्मा का है ही नहीं, उसकी चिंता में अथवा भय में ज्ञानी क्यों कर रुकेगा? चिंता को तो चेतना ने भिन्न कर डाला है।

ऐसी ज्ञानचेतना धर्मी को अंतर में होती है; ऐसी ज्ञानचेतना के द्वारा ही आत्मा का आनंद साधा जा सकता है।

भाई, तुझे आत्मा को साधना हो तो अपनी चेतना को आत्मा में एकत्रित कर... रोक... बाहर से चेतना को वापस लाकर निजस्वरूप के सन्मुख कर... निज स्वरूप में चेतना को ऐसी तन्मय कर कि जगत् की लाखों की प्रतिकूलताएँ आ जायें तो भी उससे चलित नहीं हो। देखो, यह पांडव भगवंत! इन्होंने शत्रुंजय पर्वत पर निज ध्येय के ध्यान में चेतना को ऐसी एकाग्र की है कि बाहर में शरीर जल रहा है तो भी ध्यान से चलायमान नहीं होते, तीन पांडव तो उसी समय केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त कर गए हैं। वाह! आत्मा की वीरता तो देखो, मेरे ध्यान में अन्य वस्तु है ही कहाँ कि जो मुझे विघ्नकारक हो! अतीन्द्रिय आनंद के अनुभव में तल्लीन आत्मा को विघ्न कैसा? दु:ख कैसा? सम्यग्दर्शन के लिये भी आत्मा का ऐसा निर्विकल्प ध्यान होता है, ऐसे ध्यान के... समय संसार का लक्ष छूट जाता है—पश्चात् भले ही बाहर के विकल्प आते हों, चिंता होती हो—किंतु उस धर्मी को विकल्प तथा चिंता से भिन्न जो आत्मा अनुभव में आया है, उसकी मान्यता-श्रद्धा कभी छूटती नहीं है। वज्र गिर जावे तो भी धर्मी अपने शुद्ध स्वरूप की श्रद्धा से चलायमान नहीं होता, उसकी श्रद्धा में विकल्प ने स्पर्श ही नहीं किया है, किसी भय ने प्रवेश नहीं किया; वह तो आत्मा के आनंद में ही व्याप्त हो गई है। वाह, देखो यह सम्यग्दर्शन का धर्म। भाई! अभी तो ऐसा धर्म साधन करने की ऋतु है... धर्म की सच्ची कमाई करने का अवसर है। अन्य चिंताओं में रुककर ऐसे अवसर को मत चूकना।

आत्मा आनंदस्वरूप है। जो क्रोध-मान-राग-द्वेषादि दोष हैं, वे दु:खरूप हैं; पर्याय में ऐसे जो दोष हैं, उनको दु:खदायक समझकर दूर किये बिना आत्मा का आनंद अनुभव में नहीं आवेगा। मेरी चैतन्यवस्तु आनंद से भरी हुई है, उसमें क्रोधादि है ही नहीं—ऐसा लक्ष में लेकर उसका अनुभव करने का जो पुरुषार्थ करता है, उसके क्रोधादि दोष दूर हुए बिना नहीं रहते। क्रोधादि से भिन्न उपयोगस्वरूप आत्मा का भान जहाँ तक नहीं करेगा, वहाँ तक जीव के क्रोधादिक दूर होनेवाले नहीं हैं; क्योंकि क्रोध को अपना स्वरूप मानकर उसमें वर्तता है। यह तो मोक्षप्राभृत है; मोक्ष किसप्रकार हो, उसकी यह बात है। चिदानंद तत्त्व स्वयं आनंद से भरपूर है; उसमें परवस्तु की आशारूपी लोभ का एक अंश भी नहीं है। लोभ का एक अंश भी रहेगा (मोक्ष करूँ—ऐसी इच्छा भी लोभ का प्रकार है), वहाँ तक मुक्ति नहीं होगी। जहाँ साक्षात्

आत्मा के अनुभव का आनंद प्रगट हो, वहाँ किसी प्रकार की इच्छा नहीं रहती; ऐसा अनुभव ही मोक्ष का कारण है। इसलिये कहा है कि विषय-कषायों से विरक्त होकर, क्रोध-मान-माया-लोभ का परिहार करके जो अपने निर्मल स्वभाव को ध्याता है, वह उत्तम मोक्षसुख को प्राप्त करता है। शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र कहो अथवा आत्मा के निर्मल स्वभाव का ध्यान कहो, वह मोक्ष का कारण है।

श्री गुरु की पंच-प्रसादी

(१) चैतन्य में अंदर प्रवेश करते समय गंभीर ज्ञानचेतना द्वारा वीतरागी आनंद का अनुभव प्रगट होता है। धर्मी की ज्ञानचेतना के अंतर-अनुभव के परिणाम सूक्ष्म-गंभीर तथा गहन होते हैं।

(२) जो विकल्प करने में ही खड़ा है, निर्विकल्प-ज्ञानचेतना में जो आता नहीं, वही विकल्प का कर्ता है; निर्विकल्प-ज्ञानचेतना में आये बिना विकल्प का कर्तापन (अज्ञान) छूटता नहीं; जहाँ अंतर्मुख निर्विकल्प अनुभव में आया, वहाँ विकल्प से रहित ज्ञानचेतना प्रगट हुई; उसमें विकल्प के किसी भी अंश का कर्तृत्व नहीं रहता।

(३) विकल्प को ही जो अपनेरूप जानता है, उसे उसका कर्तापना कैसे छूटेगा? जो अंतर्मुख ज्ञानभाव में तन्मय हुआ, उसको विकल्प का कर्तापना कैसे रहेगा?

(४) चैतन्य के आनंद की अनुभूति विकल्प में नहीं आ सकती।

(५) ज्ञान के उद्यान में क्रीड़ा करते हुए ज्ञानी मोक्ष की साधना करते हैं।

'जैनतत्त्वमीमांसा' के विषय में आत्म-निवेदन

पंडित श्री फूलचंदजी सि. शास्त्री द्वारा रचित 'जैनतत्त्वमीमांसा' पर पंडित श्री जगन्मोहनलालजी शास्त्री ने हृदय से मनन करके जो लिखा है, वह पाठकों के सन्मुख रखता हूँ। क्योंकि जिनवाणी की भक्तिवश सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञान का रहस्योद्घाटन 'जैनतत्त्वमीमांसा' नामक लघु पुस्तिका द्वारा हुआ है, मध्यस्थ जिज्ञासुओं को सत्य बात और उसका हितरूप प्रयोजन समझ में आया है, यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा। —संपादक

पंडितजीने डेढ़-दो वर्ष लगकर अनवरत परिश्रम और एकाग्रतापूर्वक तत्त्व का मननकर साहित्यसृजन का यह श्लाघनीय कार्य किया है। इस प्रसंग से हम अन्य विद्वानों का ध्यान भी इस बात की ओर विशेषरूप से आकर्षित करना चाहते हैं कि विद्वान केवल समाज के मुख नहीं हैं। वे आगम की रहस्योद्घाटन के जिम्मेदार हैं। अत: उन्हें, हमारे अमुक वक्तव्य से समाज में कैसी प्रतिक्रिया होती है, वह अनुकूल होती है या प्रतिकूल, यह लक्ष्य में रखना जरूरी नहीं है। यदि उन्हें किसी प्रकार भय हो भी तो सबसे बड़ा भय आगम का होना चाहिये। विद्वानों का प्रमुख कार्य जिनागम की सेवा है और यह तभी संभव है, जब वे समाज के भय से मुक्त होकर सिद्धांत के रहस्य को उसके सामने रख सकें। कार्य बड़ा है। इस काल में इसका उनके ऊपर उत्तरदायित्व है, इसलिये उन्हें यह कार्य सब प्रकार की मोह-ममता को छोड़कर करना ही चाहिये। समाज का संधारणा करना उनका मुख्य कार्य नहीं है। यदि वे दोनों प्रकार के कार्यों का यथास्थान निर्वाह कर सकें तो उत्तम है। पर समाज के संधारण के लिये आगम को गौण करना उत्तम नहीं है। हमें भरोसा है कि विद्वान मेरे इस निवेदन को अपने हृदय में स्थान

देंगे और ऐसा मार्ग स्वीकार करेंगे, जिससे उनके सद्प्रयत्नस्वरूप आगम का रहस्य और विशदता के साथ प्रकाश में आवे।

संसारी प्राणी के सामने मुख्य प्रश्न दो हैं—प्रथम तो यह कि वह वर्तमान में परतंत्र क्यों हो रहा है ? क्या वह अपनी कमजोरी के कारण परतंत्र हो रहा है या कर्मों की बलवत्ता के कारण परतंत्र हो रहा है। दूसरा प्रश्न है कि वह इस परतंत्रता से छुटकारा पाकर स्वतंत्र कैसे होगा। अन्य निमित्त कारण उसे स्वतंत्र करेंगे या वह निमित्तों की उपेक्षा कर स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा स्वतंत्र होगा। ये दो प्रश्न हैं जिनका जैनदर्शन के संदर्भ में उसे उत्तर प्राप्त करना है।

यह तो प्रत्येक विचारक जानता है कि जैनदर्शन में जितने भी जड़-चेतन द्रव्य स्वीकार किये गये हैं, वे सब अपने-अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को लिए हुए प्रतिष्ठित हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को अपना कुछ भी अंश प्रदान करता हो या जिस द्रव्य का जो व्यक्तित्व अनादिकाल से प्रतिष्ठित है, उसमें कुछ भी न्यूनाधिकता करता हो, ऐसा नहीं है। ये दो जैनदर्शन के अकाट्य नियम हैं। अत: इनके संदर्भ में प्रत्येक द्रव्य के उत्पाद-व्ययरूप कार्य के संबंध में विचार करने पर विदित होता है कि जिस द्रव्य में जो भी स्वभाव या विभावरूप कार्य होता है, वह अपने परिणमन स्वभाव के कारण उपादानशक्ति के बल से ही होता है। अन्य कोई द्रव्य उसमें उसे उत्पन्न करता हो और तब उसका वह स्वभाव-विभावरूप कार्य होता हो, ऐसा नहीं है, क्योंकि अन्य द्रव्य से उसकी उत्पत्ति मानने पर न तो द्रव्य के परिणमन स्वभाव की ही सिद्धि होती है और न ही 'एक द्रव्य दूसरे को अपना कुछ भी अंश प्रदान नहीं करता' इस तथ्य का ही समर्थन किया जा सकता है। अतएव जहाँ तक प्रत्येक द्रव्य के परिणमन स्वभाव का प्रश्न है और जहाँ तक उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व का प्रश्न है, वहाँ तक तो यही मानना उचित है कि प्रत्येक द्रव्य में जो उत्पाद-व्ययरूप कार्य होता है, उसमें वह स्वाधीन है। ऐसा मानना परमार्थ सत्य और वस्तुस्वभाव के अनुरूप है। इसमें किसी भी प्रकार की 'ननु, न च' करना प्रत्येक द्रव्य के परिणामस्वभाव और उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व की अवहेलना करना होगा, जो उचित नहीं है, क्योंकि इन तथ्यों की अवहेलना करने पर छह द्रव्यों और उनके भेदों की पूरी व्यवस्था गड़बड़ा जायेगी। फिर भी जैनदर्शन में प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति में निमित्तों को स्वीकार किया गया है, सो उसका कारण अन्य है।

बात यह है कि प्रत्येक द्रव्य के अपने-अपने समर्थ उपादान के अनुसार प्रत्येक समय में कार्य होते समय अन्य द्रव्य की पर्याय उसके बलाधान में स्वयं निमित्त होती है! बल का आधान कर कार्य को (अपने परिणमन स्वभाव और स्वतंत्र व्यक्तित्व के कारण) स्वयं उपादान उत्पन्न करता है। यह कार्य निमित्त का नहीं है किंतु कार्य को उत्पन्न करने के लिए उपादान जो बल का आधान करता है, उसमें अन्य द्रव्य की पर्याय स्वयं निमित्त हो जाती है, यह वस्तुस्थिति है। इसके रहते हुए भी लोक में निमित्त की मुख्यता से कुछ इसप्रकार के तर्क उपस्थित किये जाते हैं—

(१) उपादान हो और निमित्त न हो तो कार्य नहीं होगा।

(२) समर्थ उपादान हो और बाधक सामग्री आ जाये तो कार्य नहीं होगा।

(३) समर्थ उपादान हो, निमित्त हो पर बाधक कारण आ जाये तो कार्य नहीं होगा।

ये तीन तर्क हैं। इन पर विचार करने से विदित होता है कि प्रथम दोनों तर्क तीसरे तर्क में ही समाहित हो जाते हैं, अतः तीसरे तर्क पर समुचित विचार करने से शेष दो तर्कों का उत्तर हो ही जायेगा, अतः तीसरे तर्क के आधार से आगे विचार करते हैं—

सर्वप्रथम विचार इस बात का करना है कि जब समर्थ उपादान और लोक में निमित्त के रहते हुए भी कार्य की लोक में कही जानेवाली बाधक सामग्री आ जाती है, तब विवक्षित द्रव्य उसके कारण क्या अपने परिणमन स्वभाव को छोड़ देता है? यदि कहो कि द्रव्य में परिणमन तो तब भी होता रहता है। वह तो उसका स्वभाव है। उसे वह कैसे छोड़ सकता है तो हम पूछते हैं कि जिसे आप बाधक सामग्री कहते हो, वह किस कार्य की बाधक मानकर कहते हो? आप कहोगे कि जो कार्य हम उससे उत्पन्न करना चाहते थे, वह कार्य नहीं हुआ, इसलिये हम ऐसा कहते हैं। तो विचार कीजिए कि वह सामग्री विवक्षित द्रव्य के आगे होनेवाले कार्य की बाधक ठहरी कि आपके संकल्प की? विचार करने पर विदित होता है कि वस्तुतः वह विवक्षित द्रव्य के कार्य की बाधक तो त्रिकाल में नहीं है। हाँ, आप आगे उस द्रव्य का जैसा परिणमन चाहते थे, वैसा नहीं हुआ, इसलिये आप उसे कार्य की बाधक कहते हो, सो भाई! यही तो भ्रम है। इसी भ्रम को दूर करना है। वस्तुतः उस समय का द्रव्य का परिणमन हो आपके संकल्पानुसार न होकर अपने उपादान के अनुसार होनेवाला था, इसलिये जिसे आप अपने मन से बाधक

सामग्री कहते हो, वह उस समय उस प्रकार के परिणमन में निमित्त हो गई। अत: इन तर्कों के समाधानस्वरूप यही समझना चाहिये कि प्रत्येक समय में कार्य तो अपने उपादान के अनुसार ही होता है और उस समय जो बाह्य सामग्री उपस्थित होती है, वही उसमें निमित्त हो जाती है। निमित्त स्वयं अन्य द्रव्य के किसी कार्य को करता हो, ऐसा नहीं है। उदाहरणार्थ दीपक के प्रकाश में एक मनुष्य पढ़ रहा है। अब विचार कीजिए कि वह मनुष्य स्वयं पढ़ रहा है या दीपक पढ़ा रहा है ? दीपक पढ़ा रहा है, यह तो कहा नहीं जा सकता, क्योंकि ऐसा मानने पर दीपक के रहने तक उसका पढ़ना नहीं रुकना चाहिये। किंतु हम देखते हैं कि दीपक के सद्भाव में भी कभी वह पढ़ता है और कभी अन्य कार्य भी करने लगता है। इससे मालूम पड़ता है कि दीपक तो निमित्तमात्र है, वस्तुत: वह स्वयं पढ़ता है, दीपक बलात् उसे पढ़ाता नहीं। इसप्रकार जो नियम दीपक के लिए है, वही नियम सब निमित्तों के लिए जान लेना चाहिये। निमित्त चाहे क्रियावान् द्रव्य हो और चाहे निष्क्रिय द्रव्य हो, कार्य होगा अपने उपादान के अनुसार ही। अत: निमित्त का विकल्प छोड़कर प्रत्येक संसारी जीव को अपने उपादान की ही सम्हाल करनी चाहिये। जो संसारी जीव अपने उपादान की सम्हाल करता है, वह अपने मोक्षरूप इष्ट प्रयोजन की सिद्धि में सफल होता है और जो संसारी जीव उपादान की उपेक्षा कर अपने अज्ञान के कारण निमित्तों के मिलाने के विकल्प करता रहता है, वह अज्ञानी हुआ संसार का पात्र बना रहता है।

कार्योत्पत्ति में निमित्तों का स्थान है, इसका निषेध नहीं और इसलिये बाह्यदृष्टि से विवेचन करते समय शास्त्रों में निमित्तों के अनुसार कार्य होता है, यह भी कहा गया है। परंतु यह सब कथन उपचरित ही जानना चाहिये। व्यवहारनय पराश्रित होने से ऐसे ही कथन को स्वीकार करता है, इसलिये मोक्षमार्ग में उसे गौण कर स्वाधीन सुख के कारणभूत निश्चयनय का आश्रय लेने का उपदेश दिया गया है। संसार अवस्था में निश्चय के साथ जहाँ जो व्यवहार होता है, होओ। पर इस जीव की यदि ऐसी श्रद्धा हो जाये कि जहाँ जो व्यवहार होता है, वह पराश्रित होने से हेय है और निश्चय स्वाश्रित होने से उपादेय है तो ऐसे व्यवहार से उसका बिगाड़ नहीं। बिगाड़ तो व्यवहार को उपादेय मानकर उससे मोक्षमार्ग की सिद्धि मानने में है। अत: मोक्षेच्छुक प्रत्येक प्राणी को यही श्रद्धा करनी चाहिये कि मोक्षमार्ग की सिद्धि मात्र

निश्चय का आश्रय लेने से ही होगी, व्यवहार का आश्रय लेने से त्रिकाल में नहीं होगी। संसारी जीव के स्वाधीन होने का यही प्रशस्त मार्ग है।

यह तो उपादान-निमित्त के आधार पर व्यक्ति स्वातंत्र्य को प्राप्त करने का क्या मार्ग है, इसकी चर्चा हुई। इसीप्रकार और भी बहुत विचार हैं जिनके संबंध में परमार्थसत्य क्या है, इसे जानकर ही उसे ग्रहण करना चाहिये। उदाहरणार्थ शास्त्रों में यथास्थान निश्चयनय और व्यवहारनय के आश्रय से कथन किया गया है। उसमें निश्चयनय की अपेक्षा जो कथन किया गया है, वह यथार्थ है क्योंकि निश्चयनय जैसा वस्तु का स्वरूप है, उसका उसी रूप में निरूपण करता है। परंतु व्यवहारनय की अपेक्षा जो कथन किया गया है, वह यथार्थ नहीं है, क्योंकि जैसा वस्तु का स्वरूप है, उसका यह नय अन्यथा निरूपण करता है। जैसे शास्त्रों में कहीं पर प्रत्येक द्रव्य अपने परिणमन लक्षण कार्य का कर्ता है, ऐसा लिखा है और कहीं पर अन्य द्रव्य के कार्य का कर्ता है, ऐसा लिखा है। सो इन उदाहरणों में जहाँ पर प्रत्येक द्रव्य को अपने परिणमन लक्षण कार्य का कर्ता बतलाया है, वहाँ उस कथन को यथार्थ जानना चाहिये। और जहाँ पर अन्य द्रव्य अन्य द्रव्य के कार्य का कर्ता बतलाया है, उसे उपचरित कथन जानना चाहिये क्योंकि अन्य द्रव्य के कार्य को अन्य द्रव्य करता नहीं। कारण कि एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य के कार्य के करने का कर्तृत्व धर्म नहीं पाया जाता। फिर भी अन्य द्रव्य निमित्त होता है, इसलिये उस द्रव्य की निमित्ता दिखलाने के लिये उपचार से उसे कर्ता कह दिया जाता है। इसलिये कहाँ यथार्थ कथन है और कहाँ उपचरित कथन है, इसे समझकर ही वस्तु को स्वीकार करना चाहिये।

इसीप्रकार शास्त्रों में कहीं तो उपादान की प्रधानता से सब कार्य अपने-अपने काल में होते हैं, ऐसा लिखा है और कहीं निमित्त की प्रधानता से कार्यों का अनियम बतलाया है, सो यहाँ भी ऐसा समझना चाहिये कि प्रत्येक कार्य का उपादान अनंतर पूर्व पर्याय विशिष्ट द्रव्य होता है, अतएव अगले समय में कार्य भी उसी के अनुरूप होगा। कार्य की उत्पत्ति के समय निमित्त उसे अन्यथा नहीं परिणमा सकेगा, इसलिये जो उपादान की अपेक्षा कथन है, वह यथार्थ है और जो निमित्त की अपेक्षा कथन है, वह यथार्थ तो नहीं है परंतु वहाँ पर निमित्त क्या है, यह दिखलाने के लिये वैसा कथन किया गया है। अतएव ऐसे स्थलों पर जहाँ जिस अपेक्षा से कथन हो, उसे समझकर वस्तु को स्वीकार करना चाहिये।

इसीप्रकार और भी बहुत से विषय हैं, जिनमें वस्तु का निर्णय करते समय और उनका व्याख्यान करते समय विचार की आवश्यकता है। हमें प्रसन्नता है कि 'जैनतत्त्वमीमांसा' ग्रंथ में पंडितजी ने उन सब विषयों का समावेश कर लिया है, जिनमें तत्त्वजिज्ञासुओं की दृष्टि स्पष्ट होने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी बन गई है। इसकी लेखनशैली सरल, सुस्पष्ट और सुबोध है। पंडितजी के इस समयोपयोगी सांस्कृतिक साहित्यिक सेवा की जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। हमें विश्वास है कि समाज इससे लाभ उठाकर अपनी ज्ञानवृद्धि करेगी। —जगन्मोहनलाल शास्त्री

✶ इस संसार में मेरी आत्मा ही अकेला मेरा शरण है; शाश्वत है जो सदा सुख स्वरूप-ज्ञान दर्शनस्वरूप है, अन्य कुछ भी शरीर, धन, इंद्रियों, बंधु, स्त्री, पुत्रादि मेरे नहीं हैं, वह तो सभी कर्मों के संयोग से मिलते हैं और उसका आलंबन से यह जीव दु:खी ही होता है। अत: उस ओर का मोह व्यर्थ ही है ऐसा विचार करके हे जीव! परमहितकारी, सत्यभूत मोक्षमार्ग का शरण ले ॥४१६॥ *(अमितगति आचार्यकृत)*

❀ ❀ ❀

✶ जो कटाक्षयुक्त आक्षेपवाले वचन से दूर है अन्य जनों के गुणों में दोषारोपण करता नहीं है। आत्मश्रद्धा दूर से ही छोड़ता है, अन्य के दोष न देखता है, न हँसी उड़ाता है। न पर के गूढ़ मार्मिक बात प्रगट करता है, क्षमा के द्वारा क्रोध और गर्व को जिसने जड़मूल से उखेड़ दिया है, ऐसे पुरुष को सज्जनों सर्वदा श्रेष्ठ मानता है ॥४५२॥ *(अमितगति आचार्यकृत)*

व्यवहार प्रतिक्रमण का स्वरूप

[व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार प्रत्याख्यान और व्यवहार आलोचना का निर्देश करते हैं।]

ज्ञानी जीव की छठे गुणस्थान में तो सविकल्पदशा होती ही है, चौथे और पाँचवें गुणस्थान में वह बहुलता से होती है। इसलिये इस अवस्था में पूर्व में ली हुई तीनों कालसंबंधी बाह्य प्रतिज्ञा का वह सम्यक् प्रकार से पालने का भाव करता है। कदाचित् पूर्व में दोष लगा हो तो उसका प्रतिक्रमण करता है, इच्छा पर नियंत्रण स्थापित करने के अभिप्राय से भविष्य के भोगोपयोग आदि संबंधी वस्तुओं का प्रत्याख्यान करता है और वर्तमान में प्रमादजन्य दोष की आलोचना करता है। इसी को क्रम से व्यवहार (द्रव्य) प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना कहते हैं। इसे गुरु आदि के समीप करने का विधान है। ये अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत और भावलिंगी मुनि के अपनी-अपनी भूमिकानुसार शुद्धोपयोग से रहित अवस्था में होते हैं, इसलिये मोक्ष के कारणभूत आत्मशुद्धि से सहचर होने से इन्हें व्यवहार से प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना, यह संज्ञा दी है। वस्तुतः है यह रागपरिणति ही, इसलिये ऐसी परिणति को उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। किंतु इससे मोक्षमार्ग दो प्रकार का है, ऐसा नहीं समझना चाहिये। वीतराग परिणामस्वरूप मोक्षमार्ग तो एक ही है, दो नहीं। किंतु उसके सद्भाव में ऐसी राग-परिणति होती है, इसलिये उसका सहचर होने के कारण इसे भी मोक्षमार्ग कहने में आता है। इस विषय को विशदरूप से समझने के लिये पंडितप्रवर टोडरमलजी के मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २३५ को देखिए।

अज्ञानी दो प्रकार का मोक्षमार्ग मानते हैं, उसीप्रकार दो प्रकार का प्रतिक्रमणादि मानते हैं, यह श्रद्धा मिथ्या है। अर्थात् अज्ञानी निश्चय-व्यवहार दोनों को मोक्षमार्ग में उपादेय मानते हैं, यह भ्रम है, क्योंकि इन दोनों का स्वरूप परस्पर विरुद्ध है। इस बात को स्पष्ट करते हुए नियमसार में परमार्थ प्रतिक्रमण के कथन का प्रारंभ करते हुए उत्थानिका में कहा है—'व्यवहार-चारित्र से और उसके फल की प्राप्ति से निश्चय चारित्र प्रतिपक्ष है।' इससे स्पष्ट है कि दोनों का स्वरूप और फल परस्पर विरुद्ध है। व्यवहार का फल आस्रव और बंध है तथा

निश्चय का फल संवर और निर्जरा है। इसलिये ज्ञानी के व्यवहार प्रतिक्रमणादि होते हैं, ऐसा जानकर उन्हें उपादेय मानना-मोक्ष का कारण मानना, यह बड़ा भ्रम है।

शंका—मुनि और श्रावक के अपनी भूमिकानुसार संवर-निर्जरा तो होती है। यदि व्यवहार प्रतिक्रमणादि से आस्रव-बंध होता है तो संवर-निर्जरा किससे होती है ?

समाधान—मुनि और श्रावक के व्यवहार प्रतिक्रमणादि से संवर-निर्जरा होती है, ऐसा तो नहीं है। किंतु उस काल में श्रावक के अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यान कषाय का अभाव होने से तथा मुनि के इन दोनों के साथ प्रत्याख्यान कषाय का अभाव होने से आत्मा में जितने अंश में शुद्धि की प्राप्ति होकर स्वरूप सन्मुखता होती है, उससे संवर-निर्जरा होती है। तात्पर्य यह है कि पंचमादि गुणस्थानों में चारित्र की मिश्र पर्याय होती है। उसें जितना वीतराग का अंश है, उससे संवर-निर्जरा होती है और जितना राग का अंश है, उससे आस्रव-बंध होता है। इसप्रकार मिले हुए एक भाव में अंशभेद से पृथक्-पृथक् कार्य होता है। इसमें यह सरागता है और यह वीतरागता है, ऐसी पहिचान सम्यग्दृष्टि की होती है। इसलिये वह वहाँ जो राग शेष है, उसे हेयरूप से श्रद्धान करता है और वीतराग का कारण जो निज-शुद्धात्मतत्त्व है, उसे उपादेयरूप से श्रद्धान करता है।

शंका—चरणानुयोग में नीचे की भूमिका में व्यवहार प्रतिक्रमणादि को 'अच्छा' और ऊपर की भूमिका में 'अच्छे नहीं' ऐसा कहा है, सो इसका क्या तात्पर्य है ?

समाधान—चरणानुयोग में नीचे की भूमिका में जो व्यवहार प्रतिक्रमणादि को अच्छा कहा है, सो यह व्यवहारनय की अपेक्षा से ही कहा है। व्यवहारनय से अशुभराग की अपेक्षा शुभ राग को उसप्रकार कहने में आता है। यथार्थ में देखा जाये तो अशुभ के समान शुभ हेय है। इसी तथ्य को आचार्य कुन्दकुन्द ने नियमसार में इसप्रकार व्यक्त किया है।

जो दु पुण्णं पावं च भावं वज्जेदि णिच्चसा।
तस्स सामाइगं ठाई इदि केवलिसासणे॥१३०॥

जो पुण्य और पापरूप भाव को नित्य वर्जता है, उसके सामायिक स्थायी होती है, ऐसा केवली जिन के शासन में कहा है॥१३०॥

इसप्रकार निश्चय और व्यवहार प्रतिक्रमण आदि का स्वरूप क्या है, इसका विचार किया।●●

सच्चे देव-गुरु के समीप आकर जीव को क्या करना चाहिये ?

सम्यक्त्व के द्वारा आत्मा के आनंद का अनुभव किये बिना दुःख दूर नहीं होगा।

जीव के कल्याण के लिये ज्ञानी उपदेश देते हैं कि आत्महित के अभिलाषी मुमुक्षु जीव को गृहीत-अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का त्याग करके, शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अंगीकार करके आत्मकल्याण के मार्ग में लगना चाहिये; पराश्रयभावरूप इस संसार में भटकने का त्याग करो, मिथ्यात्वादि भावों के सेवन का त्याग करो... सावधान होकर आत्मा को रत्नत्रय धर्म की आराधना में लगाओ।

कुन्दकुन्दस्वामी नियमसार में कहते हैं कि—

मिथ्यात्व-आदिक भाव तो, चिरकाल भाये जीव ने;
सम्यक्त्व-आदिक भाव को, भाया नहीं पहले कभी॥९०॥

अरे जीव! अब मिथ्यात्वादिक दुःखदायी भावों का त्याग करके आत्मा के कल्याण के मार्ग में लग जा। मैं तो शरीर से तथा राग से भिन्न ज्ञानानंदस्वरूप हूँ—ऐसी श्रद्धा-ज्ञान अनुभव करके आत्महित में लग जा। भाई! ऐसा मनुष्य भव पाकर के तूने आत्मा को प्राप्त किया या नहीं? अपने आत्मा का उदय तूने किया या नहीं? अथवा पर की चिंता में ही जीवन व्यतीत किया? अरे, आज तक आत्मा को भूलकर मिथ्याभावों का सेवन करने से अपना स्वयं का अहित ही किया; तथा इनमें कुदेव-कुगुरु-कुधर्म के सेवन से तो आत्मा का अत्यंत अहित होने से दुःख को ही भोगा है। इसलिये हे जीव! तू सच्चे देव-गुरु-धर्म को पहिचानकर सम्यक्त्वी भावों को उत्पन्न कर—ऐसा करने से तेरा परमहित होगा।

अरे, अनेक जीव तो ऐसे हैं कि भगवान के कहे हुए वीतराग विज्ञान को तो पहिचानते नहीं और मूढ़ता के कारण ऐसा मानते हैं कि हम कुछ तत्त्वज्ञान कर रहे हैं—किंतु इससे विपरीत कुगुरुओं के निमित्त से विपरीत विचारणा में शक्ति को नष्ट करके मिथ्यात्व को पुष्ट करते हैं। ऐसे जीवों को तो सम्यग्दर्शन प्राप्ति का अवकाश ही नहीं है।

अरे, कभी थोड़ी विवेकबुद्धि भी उत्पन्न करके कुदेव-कुगुरु-कुधर्म से छूटकर सच्चे

वीतरागी देव-गुरु-धर्म के समीप भी आ जाये तो वहाँ भी वह देव-गुरु शुद्धात्मा का अनुभव करने का उपदेश देते हैं, उसको तो वह पहिचानता नहीं और केवल व्यवहारश्रद्धा करके, वास्तव में अत्तवश्रद्धालु ही रहता है, अगर उसको मिथ्यात्वादि की मंदता हुई हो तो इस अपेक्षा से दुःख भी मंद रहता है, किंतु सम्यग्दर्शन के द्वारा आत्मा के आनंद का अनुभव हुए बिना दुःख कभी दूर होनेवाला नहीं; मंद-तीव्र होता रहेगा किंतु उसका अभाव नहीं हो सकेगा। इसलिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अतिरिक्त जीव अन्य उपायों को जो करता है, वह सभी झूठे हैं। तो सच्चा उपाय कौन सा ? कि वीतराग-विज्ञान अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

अरे, जीव को जो स्वयं-प्रत्यक्ष दुःख वेदन में आ रहा है, वह स्वयं का दुःख भी भासित नहीं होता, तो अन्य कोई उसे किसप्रकार बतला सकता है ? अपने परिणाम देखने जितना धैर्य तथा विशुद्धता होना चाहिये। किंचित् धैर्य धारण कर अंदर में विचार कर कि शास्त्रों में जो दुःखों का वर्णन किया गया है, वैसा दुःख तेरे वेदन में आता है या नहीं ? अपने दुःख को तथा दुःख के कारणों को पहिचानकर इनसे मुक्त होने के लिये इस मनुष्यभव को धर्म साधन में लगायेगा तो तुझे मोक्षसुख की प्राप्ति होगी। मोक्षसुख मनुष्यभव में ही साधा जा सकता है; किंतु मोक्ष साधन के बदले केवल विषयों में ही मनुष्यभव व्यतीत कर देगा तो पछतायेगा।

अरे, श्रीगुरु के बारंबार समझाने पर भी जीव सम्यक् परिणमन नहीं करता, अंदर गहराई से सोचता ही नहीं। भाई, निजहित किसप्रकार हो, इसका तू विचार कर! मोक्षमार्गप्रकाशक में पंडित टोडरमलजी कहते हैं कि—'भला होना है इसलिये जीव को ऐसा विचार आता है कि मैं कौन हूँ ? कहाँ से आकर यहाँ जन्म धारण किया है ? मर करके कहाँ जाऊँगा ? मेरा स्वरूप क्या है ? यह चरित्र कैसा हो रहा है ? मुझे जो भाव हो रहे हैं, इनका क्या फल प्राप्त होगा ? यह जीव दुःखी हो रहा है तो इस दुःख को दूर करने का उपाय क्या ? इतनी बातों का निर्णय करके जिससे अपना हित हो, वह करना'—ऐसे विचारपूर्वक वह जीव पुरुषार्थवान होता है। अति प्रीतिपूर्वक श्रवण करके गुरु के द्वारा बतलाये हुए वस्तुस्वरूप का अपने अंतर में बारंबार विचार करके, सत्यस्वरूप का निश्चय करके उसमें पुरुषार्थ करता है... इसप्रकार वीतराग-विज्ञान के द्वारा अपना कल्याण साधता है। इसलिये हे जीवो! वीतरागी देव-गुरु का उपदेश प्राप्त करके अपने कल्याण के लिये सच्चे आत्मतत्त्व का निर्णय करो।●●

वर्तमान में भी आत्मा का ध्यान हो सकता है
ध्यान नहीं तो धर्म भी नहीं

[अष्टप्राभृत-मोक्षप्राभृत के प्रवचनों में से]

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के ध्यान द्वारा ही प्रगट होते हैं; ध्यान के बिना धर्म नहीं हो सकता, मोक्षमार्ग नहीं हो सकता।

प्रश्न— इस काल में भी आत्मध्यान हो सकता है ?

—हाँ; इस काल में भी आत्मा का ध्यान हो सकता है। आत्मा के ध्यान में ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। आत्मा के ध्यान को अस्वीकार करना, यह सम्यग्दर्शन को अस्वीकार करने के समान है। आत्मा के ध्यान को जो स्वीकार नहीं करते, वह सम्यग्दर्शन से रहित हैं; मिथ्यादृष्टि हैं; आत्मा की शुद्धि प्रगट करने की योग्यता उनमें नहीं है।

ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव संसार-सुख में ही लीन रहते हैं अर्थात् राग में ही लीन रहते हैं; इसलिये राग से रहित आत्मा के अतीन्द्रिय सुख की अथवा ध्यान की उनको खबर नहीं। राग में ही लीन होकर शुभराग को ही धर्म मान बैठे हैं। उनको राग से रहित शुद्धोपयोगरूप ध्यान कहाँ से होगा ? अरे भाई ! तेरा आत्मा अभी है या नहीं ? आत्मा है तो उसका ध्यान हो सकता है।

अरे जीव ! आत्मा का ध्यान नहीं तो तू सम्यग्दर्शन किसप्रकार प्रगट करेगा ? सम्यग्दर्शन के बिना व्रत-तप-साधुपना तू कहाँ से लायेगा ? इस काल में मुनिपना तो है किंतु आत्मा का ध्यान नहीं—यह बात कैसी ? आत्मा का ध्यान नहीं तो मुनिपना कहाँ से आया ? केवल शुभराग से सम्यग्दर्शन अथवा साधुपना कभी हो नहीं सकता।

ध्यान नहीं—ऐसा कहनेवाले को सम्यग्दर्शन ही नहीं है; जिसप्रकार अभव्य को कभी शुद्धता प्रगट नहीं होती, उसीप्रकार इसको भी आत्मा के ध्यान बिना कभी शुद्धता प्रगट नहीं होती। तीनों काल में शुद्धात्मा के निर्विकल्प ध्यान के द्वारा ही मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है, इसके बिना मोक्षमार्ग का अंश भी नहीं होता। पंचम काल का बहाना बनाकर मूढ़ जीव आत्मा की रुचि का त्याग करके विषयों में लीन रहता है। आचार्यदेव कहते हैं कि अरे भाई ! इस भरतक्षेत्र में वर्तमान में भी आत्मा की रुचि करके उसका धर्मध्यानपूर्वक उसका अतीन्द्रिय

सुख प्रगट होता है। इन्द्रिय-सुखों की रुचि को छोड़कर आत्मा की रुचि करके उसके सन्मुख होकर उसका ध्यान कर। श्रावक को भी आत्मा के ध्यान का उपदेश देकर कहा है कि हे श्रावक! शुद्धात्मा का सम्यक्त्व प्रगट करके उसको ध्यान में चिंतवन कर।

शुभराग की क्रिया को धर्म मानकर आत्मा के ध्यान का निषेध करता है—उस जीव को तो राग में ही रुकना रहा, रागरहित शुद्धात्मा की रुचि का उसने त्याग कर दिया है। आचार्यदेव कहते हैं कि अरे भाई! राग से पार ऐसे शुद्धात्मा का निर्विकल्प ध्यान तथा आनंद का अनुभव वर्तमान में हो सकता है।—इसको तू अस्वीकार मत कर। किंतु प्रसन्नता से स्वीकार करके अंतर्मुख होने का प्रयत्न कर। ऐसे आत्मा की बात तुझे इस काल में श्रवण करने को मिली है और तू उसमें अंतर्मुख नहीं हो सकता—ऐसा कहकर उसका निषेध करेगा तो तुझे आत्मा की शुद्धता अथवा आनंद प्रगट नहीं होगा; मोक्षमार्ग के ऐसे अवसर को तू छोड़ देगा—इसलिये आत्मा की रुचि करके, रागादि विषयों की रुचि का त्याग करके तू आत्मा के धर्मध्यान का प्रयत्न कर। धर्मध्यान के बिना जीव को सच्ची श्रद्धा नहीं हो सकती; क्योंकि ध्यान के द्वारा अंतर में जीव के अनुभव बिना उसकी सच्ची श्रद्धा नहीं होती। राग में खड़े रहकर आत्मा की श्रद्धा नहीं हो सकती अर्थात् धर्म नहीं हो सकता। भाई, इस समय तुझे धर्म करना है या नहीं?—तो धर्म आत्मा के ध्यान द्वारा ही होता है, आत्मा का धर्मध्यान इस समय भी हो सकता है। प्रवचनसार की समाप्ति में कहते हैं कि हे जीवों! अतीन्द्रिय सुखरूप आत्मा हमने पूर्णतया स्पष्टरूप से बतलाया है, अब ऐसे आत्मा का तुम आज ही अनुभव करो, वर्तमान में ध्यान द्वारा ऐसा अनुभव हो सकता है, इसलिये तुम आज ही इसका अनुभव करो... ध्यान में चिंतवन करो।

अरे, पंचम काल में आत्मा का ध्यान नहीं हो सकता तो फिर यह शुद्धात्मा का उपदेश किसको दिया? ज्ञान-आनंदमय, इन्द्रियातीत महान पदार्थ आत्मा है—ऐसा समझकर ज्ञानी अपने अंतर में उसका ध्यान करता है। निश्चय शुद्धात्मा के आश्रय से सच्चा धर्मध्यान वर्तमान में भी होता है। साक्षात् केवलज्ञान तथा मोक्ष हो, ऐसा उच्चकोटि का ध्यान (शुक्लध्यान) वर्तमान में यहाँ नहीं है, किंतु जिससे शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हो, ऐसा निश्चय धर्मध्यान तो वर्तमान में भी होता है। ऐसे ध्यान के द्वारा मोक्षमार्ग का आराधक होकर जीव एकावतारी हो सकता है। यहाँ से स्वर्ग में जाये और फिर मनुष्य होकर चारित्रदशा में शुक्लध्यान प्रगट करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है। वर्तमान में धर्मध्यान का जो निषेध करता है,

वह मोक्षमार्ग का ही निषेधक होने से आत्मा की शुद्धात्मा का ही निषेध करता है। भाई! अपने आत्मा में उपयोग लगा! जिसप्रकार पर विषयों को ध्येय बनाकर उनमें उपयोग को एकाग्र करता है, उसीप्रकार आत्मा को अंतर में ध्येय बनाकर स्वविषय में उपयोग को एकाग्र कर, तो तुझे धर्मध्यान होगा। ऐसे धर्मध्यान से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धता प्रगट होगी; यह धर्म है, वह मोक्षमार्ग है। हे भाई! ऐसे मोक्षमार्ग को अभी प्रारंभ करेगा तो एकाध भव में पूर्ण हो जायेगा; किंतु अभी इसका निषेध करके विषयों में ही प्रवर्तन करेगा तो तुझे मोक्षमार्ग कहाँ से होगा? चौथे काल में भी कहीं आत्मा में उपयोग की एकाग्रता के बिना मोक्षमार्ग नहीं होता था; तब भी आत्मा में उपयोग की एकाग्रतारूप धर्मध्यान के द्वारा ही मोक्षमार्ग होता था, तथा वर्तमान में भी ऐसे धर्मध्यान के द्वारा मोक्षमार्ग होता है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव, अमृतचन्द्राचार्यदेव आदि कहते हैं कि ऐसे मोक्षमार्ग को हमने अपने आत्मा में अंगीकार किया है और तुम भी इसको अंगीकार करो... आज ही अंगीकार करो।

पंचम काल के निर्विकल्प-आनंदमय धर्मध्यानी संतों को नमस्कार हो...!

'ले परम अणु से शिक्षा'

नहिं संयोग किसी का उसको, नहिं प्रभाव में आता।
जैसा चाहे रूप बनावे, करता नहीं प्रतीक्षा॥

वह तो जड़ तू ज्ञानी होकर रे! स्वतंत्रता खोता।
निज का दोष कर्म को देता माँगे उनसे भिक्षा॥

तू निधियों का पूर्ण कोष है, पा सकता निज बल से।
मोहाश्रित भूला दुख पाता, कर ले स्वयं परीक्षा॥

रख उपयोग शुद्ध तू अपना, उदय संग नहिं जुड़कर।
राग, द्वेष, जड़कर्म विलय हों, देख अजाची दीक्षा॥

आनंदपूर्वक क्षमाधर्म की आराधना

[भाद्रपद शुक्ला पंचमी के प्रवचन से]

आज से दशलक्षण धर्म पर्व का प्रारंभ हो रहा है; प्रथम दिवस उत्तम क्षमा का है। उत्तम क्षमा कब होती है ? कि जिससे पर्याय को अंतर में ले जाकर आनंदस्वरूप आत्मा का पता लगा लिया है, वही जीव उस आनंदधाम में रमणता करता है; उस समय बाहर की चाहे जैसी प्रतिकूलता में क्रोधभाव उत्पन्न नहीं हो—ऐसी उत्तम क्षमा है। चारित्रधर्म में उत्तम क्षमादि का समावेश है। दशलक्षण के प्रारंभ में कहते हैं कि—जो रत्नत्रययुक्त है तथा नित्य क्षमादि भावरूप परिणमित है, सर्वत्र जिसके मध्यस्थ भाव हैं, ऐसा साधु वह स्वयं धर्म है।

क्रोध से रहित शांत-स्वभाव अनुभव में आये बिना सच्ची क्षमा प्रगट नहीं होती। आत्मा के अनुभव के साथ चारित्रमोह का भी नाश करके उसमें ऐसी लीनता प्रगट हो कि—

बहु उपसर्ग कर्ता प्रत्ये पण क्रोध नहीं,
वंदे चक्री तथापि न मले मान जो;
देह जाय पण माया थाय न रोममां,
लोभ नहीं छो प्रबल सिद्धि निदान जो।

(-श्रीमद् राजचन्द्र)

ऐसी उत्तम क्षमा में आत्मा का अतीन्द्रिय आनंद है। आनंदपूर्वक की वह उत्तम क्षमा है, यही मोक्ष का कारण है। दस प्रकार का जो धर्म है, वह आनंद से परिपूर्ण है, शुद्ध चेतनारूप है। जो विकल्प उत्पन्न होता है, वह तो दु:ख है, वह कहीं धर्म नहीं है। यहाँ कहते हैं कि हे जीव! आत्मा का आनंद जिसमें निवास करता है, ऐसे वीतरागी दस धर्मों को तू परम भक्ति से पहिचान! ऐसे धर्म को पहिचानकर परमभक्ति से उसकी आराधना कर।

प्रथम उत्तम क्षमाधर्म का वर्णन करते है—

(कार्तिकेयस्वामी रचित द्वादशानुप्रेक्षा, गाथा ३९४)

मनुष्य-देव-पशु अथवा अचेतनकृत चाहे जैसा घोर भयानक उपसर्ग हो तो भी

जिनका चित्त किंचित् भी क्रोध से तप्त नहीं होता, उनके निर्मल क्षमा होती है। सुकुमाल मुनि, पांडव मुनिवर, पार्श्वनाथ मुनिराज इत्यादि ने पशु-मनुष्य-देवकृत उपसर्ग को सहन करके क्षमाधर्म की आराधना की है।

श्रीमद् राजचंद्रजी ने इस द्वादशानुप्रेक्षा का अध्ययन किया था, इसलिये 'अपूर्व अवसर' में भी कहा कि 'बहु उपसर्गकर्ता प्रत्ये पण क्रोध नहीं'।

मैं तो ज्ञानस्वभाव हूँ, मेरे स्वभाव में शांत अकषाय चैतन्यरस भरा है; उसके वेदन सहित यह उत्तम क्षमा आनंददायी है। 'मैं तो आनंद हूँ, मेरे आनंद में प्रतिकूलता उत्पन्न करनेवाला जगत में कोई है ही नहीं'—इसलिये आनंद में रहने से दु:ख की उत्पत्ति नहीं होती। क्रोध के कारण कोई जीव कभी शरीर को नष्ट करता हो, किंतु मेरे क्षमाधर्म को कोई नष्ट नहीं कर सकता—इसप्रकार शरीर से भिन्न अपने स्वभाव की भावना द्वारा धर्मात्माओं को क्षमाधर्म होता है।

ऐसी क्षमा मुख्यतया मुनि को होती है। श्रावक को भी इसका एकदेश होता है। श्रावक भी धर्मात्मा होता है, धर्म के मार्ग पर आरूढ़ होकर वह आनंदधाम के मार्ग पर चलता है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में कहा गया है कि जितने धर्म मुनि के हैं, उन सभी धर्मों का अंश श्रावक को भी होता है। किंतु ऐसा नहीं है कि मुनि को ही धर्म हो और श्रावक को धर्म न हो। श्रावकों को भी चैतन्यस्वभाव के भानपूर्वक उत्तम क्षमादि धर्मों की आराधना करना चाहिये। इन धर्मों की आराधना पर्यूषण के पर्व में ही होती है, ऐसा नहीं है, परंतु जीव जब चाहे तभी होती है। किसी भी क्षण जीव धर्म की आराधना कर सकता है। आत्मा के आनंदपूर्वक गजसुकुमार आदि मुनिवरों ने उत्तम क्षमा का आराधन किया है। शरीर अग्नि से जल रहा था, किंतु उस समय आत्मा तो शांतरस के समुद्र में मग्न था। क्षमा में दु:ख नहीं, क्षमा में तो अतीन्द्रिय आनंद का वेदन है।

क्षमा का उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे जीव! बाह्य में प्रतिकूलता का अवसर प्राप्त हो तथा उस ओर लक्ष भी जावे तो उसको क्रोध का निमित्त नहीं बनाते हुए ऐसा विचार करके क्षमा रखना कि—निंदा इत्यादि करनेवाले जिन दोषों का वर्णन करते हैं, अगर वह दोष मेरे में हैं तो उन्होंने क्या बुरा कहा ?—मुझे अपने दोषों को दूर करना चाहिये; उन्होंने तो दोष बतलाकर मेरे

ऊपर उपकार कर दिया है। मेरे में जो दोष नहीं हैं किंतु फिर भी उन्हें कहता है तो वह उसका अज्ञान है; इसमें मेरी क्या हानि हुई ?—मैं क्रोध करके क्यों दु:खी होऊँ ? कोई निंदा करे अथवा प्राण हर ले, तथापि मेरे सम्यक्त्वादि धर्मों का नाश नहीं कर सकता। ऐसी भावना के द्वारा धर्मी-मुनिवर प्राण जाये तो भी क्षमा धर्म से चलित नहीं होते, क्रोध नहीं करते, उन्हें क्षमा की आराधना है।

समयसार में श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव वस्तुस्वरूप बतलाते हुए कहते हैं कि भाई, निंदा-प्रशंसा के शब्द; स्पर्श-रस इत्यादि पदार्थ कहीं तुझे राग-द्वेष नहीं करवाते; वह पदार्थ तुझे नहीं कहते कि तू हमारे सामने देखकर राग-द्वेष करना; इसीप्रकार तेरा आत्मा भी उन पदार्थों में प्रवेश नहीं करता।—इसप्रकार अत्यंत भिन्नता होने से, आत्मा परद्रव्यों के प्रति अत्यंत उदासीन है। जिसप्रकार दीपक के प्रकाश में कोई भी अच्छा हो अथवा बुरा हो—किंतु दीपक उनके प्रति राग-द्वेष नहीं करता, वह तो अपने प्रकाशस्वभाव से प्रकाशित करता रहता है। इसीप्रकार ज्ञान का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है; इसके ज्ञानप्रकाश में निंदा के शब्द परिणमित हों अथवा प्रशंसा के शब्द परिणमित हों, किंतु ज्ञानप्रकाश का स्वभाव उसमें राग अथवा द्वेष करने का नहीं है, वह तो अपने प्रकाशकस्वभाव में ही वर्तता है।—ऐसे ज्ञानस्वभाव को जानने से जीव उपशमभाव को प्राप्त होता है। उपशमभाव का अनुभव होने से क्रोधादि का अभाव हो जाना, वही उत्तम अर्थात् वीतरागी क्षमाधर्म है। ज्ञान का ज्ञानस्वरूप में स्थिर रहना तथा क्रोधादि में विक्रिया न होने देना, वही क्षमाधर्म की उपासना है; ऐसी क्षमा, वही आनंद को देनेवाली है।

आनंदकारी क्षमा धर्म की जय हो!

हे जीव! आनंद से भरपूर निजगृह में निवास कर

पूज्य स्वामीजी ने भाईदोज के दिन भावशुद्धि का उपदेश देते हुए कहा कि हे भाई! तू चैतन्यतत्त्व का प्रेम कर, उसके रस में उत्साह ले। बाह्य विषय और बाह्यभाव संसार का कारण है, उसका रस छोड़कर आनंदधाम ऐसे आत्मा में निवास कर। इंद्रिय या राग में तेरा निवास नहीं, आनंद से भरपूर अतीन्द्रिय स्वभाव में ही तेरा निवास है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी भावशुद्धि, वह मोक्ष का कारण है, उसका उपदेश देते हैं। हे जीव! प्रथम तू भावशुद्धि कर; भावशुद्धिरहित क्रियायें तो जनरंजन के लिये हैं, उनमें आत्मा का किंचित् हित नहीं।

आत्मा पाँच इंद्रियों से रहित है, मन के संकल्प-विकल्पों से भी रहित है। पाँच इन्द्रियों से और मन के विषयों से भी भिन्न ऐसे ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा के अनुभव द्वारा भावशुद्धि होती है। ऐसी भावशुद्धि के बिना जीव दु:ख के ही पंथ में पड़े हुए हैं। सुख के पंथ की जिसे प्राप्ति हुई है, ऐसे धर्मी जीव को आत्मा के सम्यक् चेतनस्वभाव सिवाय जगत में कहीं रुचि नहीं रहती। मैं तो आत्मा हूँ, अैर मुझमें ज्ञान है; मेरे ज्ञान-आनंद के साथ मैं हूँ, संयोग के साथ मैं नहीं, ऐसी भावनावाला जीव हित के पंथ में लगा हुआ है। चैतन्य की भावना से उसको ज्ञान और आनंद की किरणोंवाला सुप्रभात विकसित होता है।

भाई, तू चैतन्यतत्त्व का प्रेम कर, उसके रस में उत्साह ले, बाहर के पदार्थों और भावों में रस, वह तो चार गतिरूप संसार का कारण है। ज्ञानानंदधाम-आनंद का घर तो आत्मा है, उसका प्रेम बढ़ाकर उसमें निवास कर। अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद लेकर इन्द्रियसेवन को तू तोड़ दे, इन्द्रियों की ओर एकताबुद्धि छोड़कर अतीन्द्रियस्वभाव में तू एकाग्र हो। तेरा निवास इन्द्रियों में नहीं, राग में तेरा निवास नहीं। आनंद से भरपूर अतीन्द्रिय स्वभाव में ही तेरा निवास है। इन्द्रियों से भिन्न ऐसे चिदानंदस्वभाव को अनुभव में ले, तभी इन्द्रियविषयों को जीत सकता है।

इन्द्रियों से मैं जानता हूँ—ऐसा जो माने, वह इन्द्रियों को कहाँ से जीत सकेगा ? इन्द्रियों से जाननेवाला मैं नहीं। इन्द्रियों द्वारा जानने में आवे, ऐसा मेरा स्वरूप नहीं, इन्द्रियाँ मेरे ज्ञान का साधन भी नहीं; इन्द्रियों से पार अतीन्द्रिय स्वसंवेदनगम्य आत्मा मैं हूँ—ऐसा धर्मी अनुभव करता है।

अतीन्द्रिय आनंद का धाम ऐसा आत्मा, वही निजघर है। उसमें निवास करके जिसने भावशुद्धि की, उसने निजघर में सच्चा प्रवेश किया। अज्ञानी तो इन्द्रियों के शुभ-अशुभ विषयों में ही प्रवर्तता है, इसलिये वह आत्मा के वश नहीं परंतु इन्द्रियों के वश है, तथा उसका मन परभावों में चंचल प्रवर्तता है। हे जीव! चंचल मन को वश करने के लिये तू अपने निजघर में भरपूर आनंद निधान को देख। ऐसे आत्मा के अनुभव बिना बाह्य व्रतादि द्वारा तो मात्र जनरंजन होगा, उसमें आत्मरंजन नहीं होता, आत्मा उस राग द्वारा प्रसन्न नहीं होता। भावशुद्धि बिना बाह्यभेष, दिगम्बरपना या शुभरागरूप व्रतादिक, वह किसी जीव को परमार्थ सिद्धि का कारण नहीं, वह तो संसार का ही कारण है।

बाह्य में धन का ढ़ेर हो कि शुभराग का ढ़ेर करे, परंतु जिसमें आत्मा के आनंद की प्राप्ति नहीं, उससे आत्मा को क्या लाभ! भाई! तुझे दुःखरूप ऐसे समस्त कषाय भावों में भिन्न उपयोगस्वरूप आत्मा को लक्षगत कर, और उस मिथ्यात्व तथा कषायों को छोड़।

धर्मी को राग से भिन्न चिदानंदस्वरूप का अनुभव तो हुआ है, फिर भी जो अशुभ या शुभराग है, वह छोड़नेयोग्य है, कषाय के अंश को हे जीव! तू छोड़। सम्यग्दर्शन के पश्चात् भी जिनप्रतिमा, जिनागम, निर्ग्रंथगुरु आदि संबंधी शुभराग धर्मी को आता है, शुभराग के समय जिनआज्ञा अनुसार जिनभक्ति, श्रुतभक्ति, गुरुभक्ति आदि भाव होते हैं, परंतु आत्मा के मोक्ष का कारण तो अंतर में भावशुद्धिरूपी वीतरागभाव ही है। इसलिये हे जीव! तू भावशुद्धि प्रगट कर। वास्तविक जिनआज्ञा तो स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भावशुद्धि प्रगट करना, वही है। वही अपूर्व मंगल है, वही आत्मा को आनंद देनेवाला है, और वही मोक्ष का कारण है। इसलिये हे जीव! तू सम्यक् प्रकार से भावशुद्धि कर।

हे भव्य! तू भावश्रुतज्ञानरूपी अमृत का पान कर। सम्यक् श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव करके निर्विकल्प आनंदरस को पी, जिससे तेरी अनादि की मोहतृषा का दाह मिट

जाता है। चैतन्य रस का प्याला तुमने कभी पिया नहीं, अज्ञान से तुमने जहर का प्याला पिया है। भाई! अब तो वीतराग के वचनामृत प्राप्त करके तेरे आत्मा के चैतन्यरस का पान कर; जिससे तेरी आकुलता मिटकर सिद्धपद की प्राप्ति हो। आत्मा को भूलकर बाह्य भावों का अनुभव, वह तो जहर पीने जैसा है। शुभराग हो, उसके स्वाद में भी किंचित् अमृत नहीं परंतु जहर है। इसलिये उससे भिन्न ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा को श्रद्धा में लेकर उसके स्वानुभवरूपी अमृत का पान कर। अहा! श्रीगुरु स्नेहपूर्वक चैतन्य के प्रेमरस का प्याला पिलाते हैं। वीतराग की वाणी आत्मा के परम शांतरस को दिखानेवाली है। ऐसे शांत वीतरागी चैतन्य का अनुभव, वह भावशुद्धि है। उसी से तीन लोक में सबसे उत्तम परम आनंदस्वरूप सिद्धपद की प्राप्ति होती है।

धन्य है स्वरूप के साधकों को!

जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट करने का—पूर्व में कभी नहीं किया ऐसा अनंत सम्यक् पुरुषार्थ करके सम्यग्दर्शन प्रगट किया है तथा इसप्रकार अपने संपूर्ण स्वरूप का साधक हुआ है, वह जीव किसी भी संयोग में भय से, लज्जा से, लालच से या किसी भी कारण से असत् को पोषण नहीं देता... इसकारण किसी समय देह छूटने तक की प्रतिकूलता आ जाये तो भी वह सत् से च्युत नहीं होता, असत् का आदर कभी नहीं करता। स्वरूप का साधक निःशंक एवं निडर होता है। सत्स्वरूप की श्रद्धा के बल से और सत् के माहात्म्य के सामने उसको कोई प्रतिकूलता नहीं है। यदि सत् से किंचित् भी च्युत हो तो उसको प्रतिकूलता का संयोग हुआ, ऐसा कहने में आये परंतु जो समय-समय सत् में विशेष-विशेष दृढ़ता कर रहा है, उसको तो अपने तीव्र पुरुषार्थ के सामने जगत में कुछ भी प्रतिकूल नहीं है। यह तो परिपूर्ण सत्स्वरूप के साथ अभेद हो गया; उसको विचलित करने के लिये तीनलोक में कौन समर्थ है? अहो! धन्य है ऐसे स्वरूप के साधकों को!

भगवान पारसनाथ

लेखांक-२] [गतांक से आगे

हाथी के भव में सम्यक्त्व की प्राप्ति

[मरुभूति-हाथी तथा कमठ-सर्प]

[अपने तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान की कथा चल रही है। मरुभूति तथा कमठ, यह दोनों भाई थे; कमठ ने क्रोध से मरुभूति को मार डाला; मरुभूति मरकर हाथी हुआ है, कमठ का जीव सर्प बना है। इनके राजा अरविंद वैराग्य प्राप्त करके मुनि हुए हैं... मुनिराज अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए ग्राम-नगरों में विचरण कर अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हैं।—यह बा गतांक में आ चुकी है। अब हाथी का जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है—इसका आनंदकारी वर्णन इस अंक में पढ़िये।]

सम्मेदशिखर.... यह अपने जैनधर्म का महान तीर्थ है, अनंत जीव यहाँ से सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं; इसकी यात्रा करने से सिद्धपद का स्मरण हो उठता है। अनेक मुनि यहाँ आत्मा का ध्यान करते हैं।

ऐसे सम्मेदशिखर महान तीर्थ की यात्रा करने के लिये एक विशाल संघ चला जा रहा है। इस यात्रा में हजारों श्रावक हैं; कितने ही छोटे-छोटे बालक भी उत्साह से यात्रा करने जा रहे हैं; कितने ही दिगम्बर मुनिराज भी संघ के साथ विहार कर रहे हैं। रत्नत्रयधारी यह मुनिराज किसी समय धर्मकथा कहते हैं तो किसी समय आत्मा का स्वरूप समझाते हैं, वह सुनकर सभी को अत्यंत आनंद होता है; किसी समय भक्तिपूर्वक मुनिराज को आहारदान देने का लाभ प्राप्त होने से श्रावकों को महान हर्ष होता है; आपस में सभी साधर्मी एक-दूसरे से धर्मचर्चा करते हैं, पंच परमेष्ठी का गुणगान करते हैं—इसप्रकार अत्यंत आनंदपूर्वक विशाल संघ सम्मेदशिखर की यात्रा करने के लिये जा रहा है!

जो अरविंद राजा दीक्षा लेकर मुनि हुए थे, वह अरविंद-मुनिराज भी इस संघ के साथ हैं। चलते-चलते संघ ने एक वन में पड़ाव डाला। शांत वन हजारों मनुष्यों के कोलाहल से गूंज

उठा... जंगल में मानो नगर का निर्माण हो गया हो। अरविंद मुनिराज एक वृक्ष के नीचे आत्मा के ध्यान में बैठे हुए थे। इतने में अचानक एक घटना हुई... क्या हुई ? सो सुनो।

एक विशालकाय हाथी पागल होकर चारों ओर दौड़ लगाने लगा। लोग इधर-उधर भागने लगे। कौन है यह हाथी ? थोड़े-से भवों के बाद तो यह हाथी पार्श्वनाथ भगवान बननेवाला है। पूर्व भव में मरुभूति था, जो कि मरकर हाथी बना है। वही हाथी यह है। इसका नाम वज्रघोष है; यह हाथी इस वन का राजा है, जो कि भान नहीं होने से जंगल में भटक रहा है। पूर्वभव की इसकी भाभी (कमठ की पत्नी) भी मरकर इसी वन में हथिनी हुई है। सुंदर वन में एक विशाल सरोवर है, जिसमें हाथी रोज स्नान करता है, वन में मीठे फल-फूल खाकर हथिनियों के साथ क्रीड़ा करता है। निर्जन वन में मानव कभी-कभी दिखलाई देते हैं। जिस वन में यह हाथी रहता था, उसी वन में यात्री संघ ने पड़ाव डाल दिया। वन में मानवों का भारी कोलाहल होने लगा। निर्जन वन में इतने मानव तथा वाहन हाथी ने कभी देखे नहीं थे; इसलिये मानवों को देखकर हाथी घबरा गया, पागल होकर चारों ओर दौड़-घूम करने लगा, जो कोई भी इसकी दौड़-घूम की चपेट में आ जाये, उसको मारने लगा। लोग तो चिल्लाकर-हाहाकार करते हुए चारों ओर हाथी के डर के मारे भागने लगे। हाथी ने किसी को पाँव के नीचे कुचल दिया तो किसी को सूंढ़ में पकड़कर उछाल दिया; रथों को चकनाचूर-तोड़फोड़ डाले, वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगा। अनेक मानव भयभीत होकर मुनिराज की शरण में पहुँच गये।

पागल हाथी चारों ओर घूमता-घूमता जहाँ अरविंद मुनिराज बैठे थे, उस ओर चिंघाड़ता हुआ दौड़ा। लोगों को भय लगा कि अरे, यह हाथी न जाने मुनिराज का क्या कर डालेगा!

मुनिराज तो शांत होकर बैठे हैं। उनको देखते ही सूंढ़ ऊँची करके हाथी उनकी तरफ दौड़ा... किंतु....

अरविंद मुनिराज की छाती में एक चिह्न देखते ही हाथी एकदम शांत हो गया... उसको ऐसा लगा कि अरे! इनको तो मैंने कहीं देखा है... यह मेरे कोई जाने-पहिचाने तथा हितस्वी हों, ऐसा लगता है—ऐसे विचार में हाथी एकदम शांत होकर खड़ा रह गया; उसका पागलपन दूर हो गया; वह मुनिराज के सामने सूंढ झुकाकर बैठ गया।

लोग तो आश्चर्यचकित हो गये कि अरे, मुनिराज के समीप आते ही यह पागल हाथी

अचानक शांत कैसे हो गया! यह दृश्य देखते ही चारों ओर से लोग दौड़कर मुनिराज के पास पहुँच गये। मुनिराज ने अवधिज्ञान के द्वारा हाथी के पूर्व भव को जान लिया; अचानक शांत हुए हाथी को संबोधन करके कहने लगे—अरे बुद्धिमान! यह पागलपन तुझे शोभा नहीं देता। यह पशुता, यह हिंसा, इसका तू त्याग कर! पूर्व भव में तू मरुभूति था; तब मैं अरविंद राजा था... मैं मुनि हो गया हूँ; तू मेरा मंत्री था, किंतु आत्मा का भान भूलकर आर्तध्यान से तू पशु पर्याय में उत्पन्न हुआ... अब तू चेत... आत्मा की पहिचान कर।

मुनिराज के अमृतमय वचन सुनकर हाथी को अत्यंत वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसको अपने पूर्वभव का (जातिस्मरण) ज्ञान हो गया, अपने दुष्कर्म के लिये उसको महान पश्चाताप होने लगा, उसकी आँखों में से अश्रुओं की धारा बहने लगी, विनय से मुनिराज के चरणों में मस्तक झुकाकर उनके सामने देखने लगा... उसके ज्ञान का अपने आप इतना उघाड़ हो गया कि वह मनुष्य की भाषा समझने लगा... मुनिराज की वाणी श्रवण करने की उसको जिज्ञासा जागृत हुई।

मुनिराज ने देखा कि इस हाथी के परिणाम अभी विशुद्ध होकर इसको आत्मा को समझने की तीव्र जिज्ञासा प्रगट हुई है... तथा यह एक होनहार तीर्थंकर है... इसलिये अत्यंत प्रेम से—वात्सल्य से उस हाथी को उपदेश देने लगे; अरे हाथी! तू शांत हो। यह पशु पर्याय तेरा स्वरूप नहीं है, तू तो देह से भिन्न चैतन्यमय आत्मा है। आत्मा के ज्ञान से रहित अनेक भवों में अनेक दु:ख भोगे हैं, अब आत्मा के स्वरूप को पहिचानकर सम्यग्दर्शन प्रगट कर। सम्यग्दर्शन ही जीव को महान सुखकारी है। राग तथा ज्ञान की तन्मयता के अनुभव का अविवेक त्याग दे... त्याग दे। तू प्रसन्न हो... सावधान हो... तथा सदा उपयोगरूप स्वद्रव्य ही मेरा है, ऐसा तू अनुभव कर। इससे तुझे अत्यंत आनंद होगा।

हाथी अत्यंत भक्तिपूर्वक श्रवण करता है। मुनिराज के मुख से आत्मा के स्वरूप की, सम्यग्दर्शन की बात का श्रवण करते हुए उसे अत्यंत हर्षोल्लास होता है, उसके परिणामों में अत्यंत निर्मलता होती जाती है... उसके अंतर में सम्यग्दर्शन की तैयारी चल रही है।

मुनिराज हाथी को आत्मा का परम शुद्धस्वरूप बतलाते हुए कहते हैं कि हे जीव! तेरा आत्मा अनंत गुणरत्नों का भंडार है... यह हाथी का विशाल शरीर, यह तो पुद्गलों का है, यह

तू नहीं है। तू तो ज्ञानस्वरूप है। तेरे ज्ञानस्वरूप में पाप तो नहीं है किंतु पुण्य का शुभराग भी नहीं है; तू तो वीतरागी आनंदमय है।—ऐसे अपने स्वरूप का तू अनुभव कर... उसकी श्रद्धा करके सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर।

जगत में सम्यग्दर्शन ही साररूप है; यही मोक्ष का सोपान है, यही धर्म की नींव है। सम्यग्दर्शन के बिना कोई भी धर्मक्रिया हो सकती नहीं; सम्यग्दर्शन से रहित सभी क्रियाएँ व्यर्थ हैं। मिथ्यात्व के दावानल में संपूर्ण संसार जल रहा है, उसमें से यह सम्यग्दर्शन ही बचानेवाला है। वीतराग-सर्वज्ञ अरिहंत देव, रत्नत्रयधारक दिगम्बर मुनिराज, तथा हिंसा से रहित वीतरागभावरूप धर्म—ऐसे देव-गुरु-धर्म की पहिचान करके तू श्रद्धा कर, अत्यंत भक्ति से उनका आदर करके, उन्होंने जैसा आत्मा का शुद्ध स्वरूप बतलाया है, वैसा तू पहिचान... ऐसे सम्यग्दर्शन से तेरा परम कल्याण होगा।

मुनिराज ने इसप्रकार अनेक युक्तियों द्वारा सम्यग्दर्शन का उपदेश दिया... उसका श्रवण करने से हाथी के परिणाम अंतर्मुख हुए... अंतर में अपने आत्मा का सच्चा स्वरूप देखकर उसको सम्यग्दर्शन हुआ... परम आनंद का अनुभव हुआ... उसको ऐसा लगा कि—'अहा, अमृत का समुद्र मेरे आत्मा में हिलोरें ले रहा है... परभावों से भिन्न सच्चा सुख मेरे आत्मा में भरा है, क्षण मात्र के ऐसे आनंद का अनुभव होने से अनंतभवों की थकान दूर हो जाती है।' ऐसे आत्मा का बारंबार अनुभव करने की इच्छा हुई... उपयोग बारंबार अंतर में एकाग्र होने लगा। ऐसे अनुभव की अचिंत्य अपार महिमा का कोई पार नहीं था। बारंबार उसको ऐसा प्रमोद हो रहा था कि 'अहो! इन मुनिराज ने अद्भुत उपकार करके आत्मा का मूलस्वरूप मुझे समझाया। आत्म-उपयोग स्वरूप की ओर झुकने से सहज निर्विकल्प स्वरूप अनुभव में आया... चैतन्य प्रभु अपने 'एकत्व' में आकर निजानंद में डोलने लगा... वाह! आत्मा का स्वरूप कोई अद्भुत है। परम तत्त्व को प्राप्त करके, अपने चैतन्य प्रभु को मैंने अपने में ही देख लिया है।

—इसप्रकार सम्यग्दर्शन होने के बाद हाथी के आनंद का कोई पार न रहा। उसकी आनंदमयी चेष्टाएँ एवं आत्मशांति को देखकर मुनिराज भी समझ गये कि इस हाथी के जीव ने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है; भव को छेद करके यह मोक्ष के मार्ग में आ गया है। मुनिराज ने हाथ उठाकर हाथी को आशीर्वाद दिया। संघ के हजारों मानव यह दृश्य देखकर अति प्रसन्न

हुए। एक क्षण में यह क्या हो गया, इसको सभी आश्चर्य से देख रहे थे।

आत्मा का ज्ञान होने के बाद हाथी तो अत्यंत भक्तिभाव से मुनिराज का उपकार मानने लगा... अरे, पूर्व में आत्मभान के बिना आर्तध्यान करने से मैं पशु-पर्याय को प्राप्त हुआ, किंतु अब इन मुनिराज के प्रताप से मुझे आत्मभान हो गया है; इस आत्मा के ध्यान के द्वारा अब मैं परमात्मा हो जाऊँगा।—ऐसा विचारकर वह हाथी सूंढ उठाकर मुनिराज को नमस्कार करता है।

[देखो तो सही, बंधुओं! अपना जैनधर्म कितना महान है कि उसके सेवन से पशु भी आत्मज्ञान प्राप्त करके परमात्मा हो सकते हैं। प्रत्येक आत्मा में परमात्मा होने की शक्ति विद्यमान है—ऐसा अपना जैनधर्म बतलाता है। वाह... जैनधर्म!]

मुनिराज के निकट सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझकर; हाथी के साथ-साथ अन्य अनेक जीवों ने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। जिसप्रकार तीर्थंकर अकेले मोक्ष में नहीं जाते, अन्य अनेक जीव भी उनके साथ मोक्ष में जाते हैं; उसीप्रकार यहाँ तीर्थंकर के आत्मा को सम्यग्दर्शन प्राप्त होते समय, अन्य अनेक जीवों ने भी उनके साथ सम्यग्दर्शन प्राप्त किया; चारों ओर धर्म का जय-जयकार होने लगा। थोड़े समय पहले जो हाथी पागल होकर हिंसा करता था, वही हाथी अब आत्मज्ञानी होकर शांत अहिंसक हो गया है; मुनिराज के निकट धर्म श्रवण की अभिलाषा से आतुरतापूर्वक उनके सामने देख रहा है। अनेक श्रावक भी उपदेश श्रवण करने के लिये बैठे हुए हैं।

श्री मुनिराज ने मुनिधर्म तथा श्रावकधर्म का उपदेश दिया। सम्यग्दर्शन तथा आत्मज्ञान होने के बाद जब चारित्रदशा होती है अर्थात् आत्मा का प्रचुर स्वसंवेदन होने लगता है, तब मुनिदशा होती है। यह मुनि उत्तम क्षमादि दस प्रकार के धर्मों का पालन करते हैं, अहिंसादिक पाँच पाप उनके किंचित् भी नहीं होते अर्थात् अहिंसादिक पाँच महाव्रत उनको होते हैं। सम्यग्दर्शन होने के बाद जो जीव मुनि नहीं हो सकते, वह जीव श्रावकधर्म का ग्रहण करते हैं; उनके आत्मज्ञानसहित अहिंसा इत्यादि पाँच अणुव्रत होते हैं। तिर्यंचगति में भी श्रावकधर्म का पालन हो सकता है। इसलिये हे गजराज! तुम श्रावकधर्म अंगीकार करो।

मुनिराज से धर्म का उपदेश श्रवण करके अनेक जीवों ने व्रत धारण किये। हाथी को भी ऐसी भावना जागृत हुई कि अगर मैं मानव होता तो मैं भी उत्तम मुनिधर्म को अंगीकार करता;

इसप्रकार मुनिधर्म की भावनासहित श्रावकधर्म अंगीकार किया; अर्थात् मुनिराज के चरणों में नमस्कार करके उसने पाँच अणुव्रत अंगीकार किये... वह श्रावक बना।

सम्यग्दर्शन प्राप्त करके श्रावक होने के बाद वज्रघोष हाथी बारंबार मस्तक झुकाकर अरविंद मुनिराज को नमस्कार करने लगा तथा उपकार मानने लगा। हाथी की ऐसी धर्मचेष्टा देखकर श्रावक बहुत हर्षित हुए। जब मुनिराज ने घोषणा की कि—इस हाथी का जीव आत्मा की प्राप्ति करता हुआ भरतक्षेत्र में २३वाँ तीर्थंकर होगा—तब तो सभी के हर्ष का पार नहीं रहा; हाथी को धर्मात्मा समझकर अत्यंत वात्सल्यतापूर्वक उसको निर्दोष आहार देने लगे।

यात्रीसंघ ने थोड़े समय तक उस वन में विश्राम करने के बाद सम्मेदशिखर की ओर प्रयाण किया; हाथी का जीव कुछ भवों के बाद इसी सम्मेदशिखर से मोक्ष प्राप्त करनेवाला है, जिसकी कि यात्रा करने संघ जा रहा है। अरविंद मुनिराज भी संघ के साथ विहार करने लगे, तब हाथी भी अत्यंत विनयपूर्वक अपने गुरु को पहुँचाने के लिये थोड़ी दूर तक पीछे-पीछे गया... अंत में बारंबार मुनिराज को नमस्कार करता हुआ गद्गद् भावों से वापस अपने वन में आया।

हाथी अब पंचव्रत सहित निर्दोष जीवन व्यतीत करता है; स्वयं ने जिस शुद्धात्मा का अनुभव किया, उसको बारंबार चिंतवन करता है। किसी भी जीव को वह दु:खी नहीं करता, जिससे हिंसा हो, वैसा भोजन वह नहीं करता है; शांतभाव से रहकर सूखे हुए घास-पत्ते-फल खाता है; किसी समय उपवास भी करता है। चलते समय देख-देखकर पांव रखता है। हथनियों का संग उसने त्याग दिया। विशालकाय होने के कारण अन्य जीवों को दु:ख नहीं पहुँचे, इसलिये अपने शरीर को अधिक चलाता नहीं है, वन के प्राणियों के साथ शांति से रहता है।

पूर्वभव का उसका भाई कमठ-जो कि क्रोध से मरकर तीव्र विषैला सर्प बना, वह भी इसी वन में रहता है और जीव-जंतुओं को मारकर खाता रहता है।

एक दिन हाथी को प्यास लगी, इसलिये वह पानी पीने के लिये सरोवर के समीप गया; तालाब के किनारे वृक्षों पर अनेक बंदर रहते थे, वह इस हाथी को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुये। सरोवर का निर्मल जल देखकर हाथी पानी पीने के लिये सरोवर में उतरा; किंतु उसके पाँव गहरे कीचड़ में धँस गये.... ज्यों-ज्यों कीचड़ में से निकलने का प्रयास करता; त्यों-त्यों पाँव अधिक कीचड़ में गहरे धँसते गये। अपने को कीचड़ में से निकालना अशक्य समझकर हाथी

ने आहार-पानी का त्याग करके समाधिमरण की तैयारी की; वह पंचपरमेष्ठी का स्मरण करता हुआ आत्मा का चिंतवन करने लगा।

हाथी को कीचड़ में फँसा हुआ देखकर वन के बंदर दौड़धूप करते हुए हाथी को बचाने के लिये किकियारी करने लगे... किंतु छोटे-छोटे बंदर उस विशालकाय हाथी को किसप्रकार बाहर निकाल सकते थे ? इतने में कमठ का जीव जो सर्प बना था, वह फूँकार करता हुआ वहाँ आया; हाथी को देखते ही पूर्वभव के वैर के संस्कारों के कारण तीव्र क्रोधित होकर दौड़कर हाथी को डस लिया। कालकूट विषवाले सर्प के द्वारा उसे डसे जाने के कारण हाथी को तीव्र विष चढ़ गया और कुछ ही समय में उसका मरण हो गया। परंतु उस समय उसने पूर्वभव के समान आर्तध्यान नहीं किया, किंतु आत्मज्ञानसहित धर्म की उत्तम भावना का चिंतवन करते हुऐ समाधिमरण करके शरीर को त्यागकर बारहवें स्वर्ग में देव बना।

सर्प ने हाथी को डसा देखकर बंदरों ने अत्यंत क्रोधयमान होकर उस सर्प को मार डाला; पापी सर्प आर्तध्यान से मरकर पाँचवें नरक में गया। एक समय के दोनों सगे भाई, किंतु अपने-अपने पुण्य-पाप के अनुसार एक स्वर्ग में जाता है तो दूसरा नरक में जाता है।

(इसके पश्चात् क्या हुआ ? आगामी अंक में पढ़िये)

वीतरागी संतों की वाणी

श्री नेमिचंद सिद्धांत चक्रवर्ती कहते हैं कि—हे भाई ! निर्विकल्प ध्यान की प्रसिद्धि के लिये अपने चित्त को स्थिर करना चाहता हो तो इष्ट-अनिष्ट पदार्थों में मोहित मत हो, रागी मत हो, द्वेषी मत हो।

***

श्री पद्मनंदि-मुनिराज कहते हैं कि—

जो जीव बारंबार इस आत्मतत्त्व का अभ्यास करता है, कथन करता है, विचार करता है तथा सम्यक् भावना करता है, वह नव केवललब्धिसहित अक्षय उत्तम तथा अनंत ऐसे मोक्षसुख को शीघ्र प्राप्त करता है।

विविध समाचार

सोनगढ़—(तारीख १२-१२-७०) कल प्रातःकाल ८.०० बजे परम पूज्य स्वामीजी गुजरात में अहमदाबाद, हिम्मतनगर, रणासण, फतेपुर, सावलीका २० दिवसीय विहार-कार्यक्रम पूर्ण करके सानंद सोनगढ़ पधारे। मुमुक्षुओं ने हार्दिक स्वागत किया। पूज्य स्वामीजी के आगमन से सोनगढ़ के वातावरण में पुनः जागृति आ गई है। प्रातःकाल ८.०० से ९.०० बजे तक श्री अष्टपाहुड़ पर तथा दोपहर में २.०० से ३.०० तक श्री समयसारजी पर प्रवचन हो रहे हैं। श्री जिनेन्द्र पूजा-भक्ति आदि का कार्यक्रम भी नियमितरूप से चल रहा है। विशाल परमागम मंदिर का निर्माण-कार्य सुचारुरूप से आगे बढ़ रहा है। मेहमानों के लिये भोजन एवं निवास की समुचित व्यवस्था है। बाहर से आनेवाले महानुभाव हो सके तो अपने आगमन की पूर्व सूचना देवें। *—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन*

अहमदाबाद—(तारीख २१ से २५-११-७० तक) पाँच दिन परमोपकारी पूज्य स्वामीजी अहमदाबाद में रहे। पाँच दिन तक प्रवचनों का मुख्य कार्यक्रम था। तारीख २१-११-७० के प्रातःकाल नूतन भव्य जिनमंदिर (खाडिया चार रास्ता) में दर्शन के पश्चात् स्वागत-जुलूस सहित स्वामीजी भाटिया वाडी में पधारे और वहाँ भव्य सभा-मंडप में मंगल प्रवचन हुआ। हमेशा दो बार प्रवचन तथा रात्रि को मंगलपुर में शंका-समाधान का कार्यक्रम रखा था। इस बार अहमदाबाद में धर्मजिज्ञासु श्रोताओं की संख्या ज्यादा रही, डॉक्टर, वकील, जज आदि उच्च शिक्षा प्राप्त लोग प्रवचन में आते थे; समुचित व्यवस्था के लिये मुमुक्षु मंडल को धन्यवाद!

हिम्मतनगर—(तारीख २६-२७) स्वागत-जुलूस के पश्चात् महावीरनगर सोसायटी में मंगल प्रवचन हुआ। यहाँ दो दिन के कार्यक्रम में आसपास के जिज्ञासु साधर्मियों ने अच्छा लाभ लिया। यहाँ स्वाध्यायमंदिर में नियमितरूप से पाठशाला चलती है तथा शास्त्रसभा होती है।

रणासण—(तारीख २८-२९) यहाँ भी जीर्णोद्धार सहित भव्य जिनमंदिर बना है। दो दिन तक स्वामीजी के प्रवचन तथा तत्त्वचर्चा का समाज ने अच्छी तरह लाभ लिया।

फतेपुर (गुज०) (तारीख ३१-११-७० से तारीख ७-१२-७० तक)

समवसरण जिनमंदिर तथा स्वाध्यायमंदिर का शिलान्यास

यहाँ के सुप्रसिद्ध विद्वान पंडित श्री बाबूभाई चुन्नीलाल महेता द्वारा अच्छी तरह धर्मप्रभावना हो रही है। यहाँ पूज्य स्वामीजी का हार्दिक भव्य स्वागत हुआ। प्रतिदिन श्री समयसार, प्रवचनसारजी शास्त्र पर प्रवचन होते थे। रात्रिचर्चा का सुंदर कार्यक्रम था। बाहर से भी बड़ी संख्या में साधर्मियों ने आ-आकर अच्छी तरह लाभ लिया तथा संतोष प्रगट किया। मगसिर सुदी ९ के दिन शिलान्यास-महोत्सव के निमित्त पूज्य स्वामीजी का प्रवचन पश्चात् श्री जिनेन्द्र भगवान की भव्य रथयात्रा निकाली गई। उत्सव में गुजरात के १५०० मेहमान आये थे, तदुपरांत जयपुर, भोपाल, विदिशा, गुना, दिल्ली, बम्बई, अहमदाबाद, सौराष्ट्र आदि अनेक स्थानों से मेहमान आये थे। रथयात्रा के पश्चात् पूज्य स्वामीजी की उपस्थिति में श्री समवसरण मंदिर के शिलान्यास की विधि उल्लास उत्साह भरे वातावरण में सोनगढ़ निवासी सेठ श्री खेमचंदभाई तथा उनका परिवार एवं जयपुर निवासी श्री कोमलचंदजी द्वारा हुई। साथ में सिद्धचक्र पूजन की विधि हुई थी। बाहर के मेहमानों ने तथा फतेपुर निवासी भाईयों ने भी अच्छी रकम दान में दी है। सोनगढ़ से बहिनश्री-बहन तथा ब्रह्मचारिणी बहिनों ने यहाँ आकर मंगल विधि में भाग लिया। गुजरात के साधर्मी बंधुओं की वात्सल्यभावना, धर्मप्रेम खास प्रशंसनीय है। इस मंगल कार्य के लिये फतेपुर के दिगम्बर जैन संघ को धन्यवाद! स्थानीय जैन पाठशाला की बालिकाओं द्वारा धार्मिक संवाद, नाटक आदि कार्यक्रम सुंदर उत्साहमय थे। अंतरिक्ष पार्श्वनाथ से सुप्रसिद्ध ब्रह्मचारी श्री धन्यकुमारजी आदि चार जने पधारे थे। वहाँ पूज्य कानजीस्वामी के तत्त्वावधान में गत साल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव हुआ था। उसकी फिल्म तीन हजार दर्शकों के बीच दिखाई गई। आठ दिन के कार्यक्रम में होनेवाली धर्मप्रभावना के कारण गुजरात के तथा फतेपुर के समाज ने बहुत संतोष और उपकार प्रगट किया।

—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

साबली (ईडर)—(तारीख ८ तथा ९) पूज्य स्वामीजी के पधारने पर हार्दिक भावभीना स्वागत हुआ। प्राचीन जिनमंदिरों में जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करके पूज्य स्वामीजी ने मंगल-प्रवचन किया। तत्पश्चात् पूज्य स्वामीजी की उपस्थिति में पूज्य बहिनश्री-बहिन

द्वारा वीतराग विज्ञान पाठशाला का उद्घाटन हुआ। आसपास के ग्रामों से लोग बड़ी संख्या में पूज्य स्वामीजी के दर्शन तथा उनकी मंगलवाणी सुनने के लिये आये थे। दिन में दो बार प्रवचन, रात्रि को शंका-समाधान का कार्यक्रम रहता था। दूसरे दिन दोपहर को पाठशाला के बालकों द्वारा धार्मिक संवाद हुआ था तथा पाठशाला किसप्रकार चलायी जाये, तत्संबंधी सुंदर रोचक प्रदर्शनी थी। साबली तथा भीलोडा में भव्य प्राचीन दिगंबर जिनमंदिर हैं। लोगों में अच्छा धार्मिक उत्साह है। श्री ब्रह्मचारी केशवलालजी द्वारा इस प्रदेश में अच्छी धर्मजागृति फैल रही है। प्रसिद्ध विद्वान श्री बाबूभाई फतेपुर, श्री नेमीचंदजी रखियाल, तथा श्री मीठालालजी हिम्मतनगर आदि ने जगह-जगह धार्मिक रुचि के बीज बोये हैं। धन्यवाद!

आवश्यक सूचना

श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर की शीतकालीन वार्षिक परीक्षायें दिनांक ६, ८ और ९ फरवरी को होने जा रही हैं। संबंधित संस्थायें नोट कर लें।

अब कोई भी परीक्षा प्रवेश-पत्र न भेजें। विस्तृत कार्यक्रम निम्नप्रकार है:—

६ फरवरी ७१—बालबोध पाठमाला भाग १, वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग १, छहढाला, एवं तत्त्वार्थसूत्र पूर्वार्ध।

८ फरवरी ७१—बालबोध पाठमाला भाग २, वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग २, द्रव्यसंग्रह।

९ फरवरी ७१—बालबोध पाठमाला भाग ३, वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग ३, रत्नकरण्ड श्रावकाचार।

—मंत्री, परीक्षाबोर्ड

कोलारस (शिवपुरी-म.प्र.)—पिछले दिनों यहाँ होनेवाले श्री सिद्धचक्र मंडल विधान में श्री पंडित जीवनलालजी ने अर्थविस्तार सहित शुद्धचेतना का प्रवाह बहाया था। समाज के आमंत्रण पर आरोन निवासी पंडित मोतीलालजी पधारे थे और जैनधर्म शिक्षण शिविर का सुंदर ढंग से संचालन किया था। पूज्य कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन भी

(टेप रिकार्डिंग द्वारा) सुनाये गये। इस अवसर पर यहाँ श्री गट्टूलालजी, श्री हजारीलालजी तथा श्री पंडित मोतीलालजी की प्रेरणा से स्वाध्याय-मंडल की स्थापना हुई है। 'आत्मधर्म' मासिक पत्र के २५ ग्राहक बने। युवक मंडल द्वारा 'भाग्य' नाटक दिखाया गया। पश्चात् विमानोत्सव, विद्वानों को सम्मानपत्र एवं प्रीतिभोज के साथ समारोह समाप्त हुआ।

धर्म-प्रचारार्थ बुलवा सकते हैं

श्री ब्रह्मचारी दुलीचंदजी महाराज (अधिष्ठाता—उदासीन आश्रम, इंदौर) प्रगट करते हैं कि मुझे धर्म-प्रचारार्थ जहाँ भी बुलायेंगे, मैं जा सकता हूँ।

पता—श्री ब्रह्मचारी दुलीचंदजी जैन, महावीर मार्ग, बड़वाह (म.प्र.)

'श्री समयसार नाटक'

जल्दी छप रहा है। तैयार होते ही ग्राहकों को भिजवा दिया जायेगा। प्रेस की निजी आपत्तियों के कारण विलंब हुआ है.... जिसके लिये ग्राहक क्षमा करेंगे।

'धर्म की क्रिया', 'अष्टपाहुड़' छप रहे हैं।

'श्री समयसार' (हिन्दी) का मुद्रण-कार्य प्रारंभ हो चुका है।

आवश्यक विज्ञप्ति

यदि ग्राहक संख्या पर्याप्त हो जाये तो निम्नोक्त ग्रंथ प्रकाशित करने की योजना है:—

१- पुरुषार्थसिद्धि-उपाय (स्व. पंडित टोडरमलजीकृत हिन्दी टीका)

२- मोक्षशास्त्र (संग्राहक-श्री रामजीभाई माणेकचंद दोशी) करीब ८०० पृष्ठ

३- समयसार प्रवचन (भाग ३-४-५)

४- आत्मप्रसिद्धि (समयसारजी में ४७ शक्तियों का वर्णन है, उस पर स्वामीजी के विस्तृत प्रवचन)

प्रथम ग्राहक बनना आवश्यक है। डिपाजिट नहीं लिया जाता। सिर्फ आप अपनी आवश्यक प्रतियों की संख्या सूचित करें। जहाँ मुमुक्षु मंडल हो, वहाँ उसके द्वारा सूचना भिजवायें। पता—दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

निर्विकल्प अनुभव

निर्विकल्प अनुभव से ही साधकदशा का प्रारंभ होता है। उस दशा का आनंद ऐसा है कि जिसका विकल्प से भी चिंतवन नहीं किया जा सकता। निर्विकल्प अनुभव के समय ज्ञान अतीन्द्रिय होकर प्रत्यक्ष स्वानुभव करता है, उस काल के आनंद की तो मुख्य विशेषता है, उसकी अचिंत्य महिमा है। स्वानुभव की ऐसी महिमा सुनकर किसी को ऐसा लगे कि ऐसा अनुभव तो किन्हीं बड़े-बड़े मुनियों को ही होता होगा! हम जैसे गृहस्थों को ऐसा अनुभव कैसे हो सकता है? उसका समाधान करते हुए यहाँ बतलाया है कि ऐसा निर्विकल्प स्वानुभव चौथे गुणस्थान से ही प्रारंभ होता है; ऐसा अनुभव हो, तभी चौथा गुणस्थान होता है। ऐसा अनुभव होने के पश्चात् गुणस्थानानुसार परिणाम की स्थिति और मग्नता बढ़ती जाती है। अनुभव के काल में श्रावक को मुनि समान माना है। संसार में चाहे जैसा क्लेश अथवा प्रतिकूलता के प्रसंग आयें, परंतु जहाँ चैतन्य के ध्यान की स्फुरणा हुई, वहाँ वे समस्त क्लेश दूर भागते हैं। चैतन्य के चिंतन में अकेली आनंद की ही धारा बहती है। अनुभवी जीव के अंतर की दशा ही कुछ और होती है।

कविश्री भागचंदजी कृत

अध्यात्म-पद

संत निरंतर चिंतत एस, आतमरूप अबाधित ज्ञानी॥
रोगादिक तो देहाश्रित हैं, इनतैं होत न मेरी हानी।
दहन दहत ज्यों दहन न तदगत, गमन दहन ताकी विधि ठानी॥१॥
वरणादिक विकार पुद्गल के, इनमें नहिं चैतन्य निशानी।
यद्यपि एकक्षेत्र अवगाही तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी॥२॥
मैं सर्वांग पूर्ण ज्ञायक रस, लवण खिल्लवत लीला ठानी।
मिलौ निराकुल स्वाद न आवत, तावत परपरनतिहित मानी॥३॥
'भागचंद' निरद्वंद निरामय मूरति निश्चल सिद्ध समानी।
नित अकलंक अवंक शंक बिन, निर्मल पंक बिना जिमि पानी॥४॥
संत निरंतर चिंतत ऐसैं.....

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	" " " भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	शास्त्र का अर्थ समझने की पद्धति	०.१०
१७	श्रावक धर्मप्रकाश	२.००
१८	अष्ट-प्रवचन (भाग-१)	१.५०
१९	अष्ट-प्रवचन (भाग-२)	१.५०
२०	मोक्षमार्गप्रकाशक	२.५०
२१	पं. टोडरमलजी स्मारिका विशेषांक	१.००
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२४	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२६	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
२७	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-३	०.६५
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	३.२५
२८	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२९	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
३०	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र)	६.००
३१	मोक्षमार्गप्रकाशक ७वाँ अध्याय	०.५०
३२	जैन बालपोथी भाग-२	०.४०
३३	अष्टपाहुड़ (कुन्दकुन्दाचार्यकृत) पं. जयचंदजीकृत भाषावचनिका	प्रेस में
३४	तत्त्वनिर्णय	०.२०
३५	शब्द-कोष	०.२०
३६	हितपद संग्रह (भाग-२)	०.७५

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)